गांधी की ताकत

देव नारायण पाठक, एम. ए

गांधी चरितामृत
(एक महाकाव्य)

रचयिता
देवनारायण पाठक एम० ए०, साहित्य-रत्न
सुलतानपुर

प्रकाशक
श्री चन्द्रबली पाठक
भूतपूर्व अध्यक्ष जिला कांग्रेस कमेटी
पल्टनबाजार, सुलतानपुर

प्रथम बार १०००] गांधी जयन्ती १९५७ मूल्य ६)

प्रकाशक :
श्री चंद्रबली पाठक
पल्टनबाजार, सुलतानपुर

मुद्रक :
पं० कामेश्वर नाथ भार्गव
पियरलेस प्रिंटर्स,
२०५, न्यू बैरहना,
इलाहाबाद

दो शब्द

स्वतंत्रता आन्दोलन के वीर सैनिक ज्येष्ठ भ्राता श्री चन्द्रबली पाठक के प्रभाव एवं सम्पर्क से बाल्यावस्था से ही मैं पूज्य महात्मा गांधी का अनन्य भक्त बन गया हूँ। बापू जी के प्रति हार्दिक श्रद्धा से प्रेरित होकर कभी-कभी उनकी प्रशंसा में कुछ मुक्तक रचनाएँ कर लिया करता था, चिरकाल से गांधी जी के सम्बन्ध में एक प्रबन्ध काव्य लिखने की मेरी प्रबल इच्छा थी। मेरे मित्र पं० दूध नारायण शास्त्री एम० ए०, साहित्य रत्न से इस इच्छा को विशेष प्रोत्साहन मिला और पूज्य बापू के चरणों को प्रणाम कर अब अपनी उस हार्दिक भावना को साकारता प्रदान करने का मैंने निश्चय किया। बीच-बीच में अनेक कठिनाइयाँ और बाधाएँ आयीं, किन्तु उन सब का सामना करता हुआ मैं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता गया। फलस्वरूप यह ग्रन्थ आपके समक्ष उपस्थित कर सका हूँ। काव्य की सफलता, असफलता का निर्णय पाठक स्वयं ही करेंगे।

ग्रन्थ रचना करते समय मुख्य-मुख्य स्थलों को जब मैं अपनी धर्मपत्नी को सुनाता तो वह हर्ष विभोर हो उठती और शीघ्रातिशीघ्र इस ग्रन्थ को प्रकाशित देखना चाहती थीं, किन्तु दुर्भाग्य से उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी और वह गत २६ अप्रैल सन् १९५६ ई० को परलोक वासिनी हो गई।

यहाँ पर स्थानीय साहित्यिक संस्था आनन्द भारती के सदस्यों का, जिनसे समय-समय पर प्रेरणा एवं परामर्श मिला है, आभार प्रकट करता हूँ। इस ग्रन्थ को पढ़ कर यदि देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना का जागरण एवं बापू के प्रति श्रद्धा के भाव बढ़े, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

सुलतानपुर — देवनारायण पाठक

गांधी जयन्ती १९५७ — एम० ए०, साहित्यरत्न

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	छन्द	चरण	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९	३	श्लोक	त्रिलोक
५	२३	१	×	श्रवण्यं था मोहन रूप सर्वथा।
७	३८	३	सेजै	जैसे
१०	५४	४	क	की
१५	२	२	प्रापी	प्रतापी
२५	५८	१	ज्या	ज्यों
४१	६२	१	के	की
६५	१६	—	यह छन्द नहीं	चाहिए
६५	१९	१	योग	धैर्य
७२	६३	३	को	थे
७९	१०५	४	द्रत	द्रुत
८५	९	१	संगम	संग
१०६	३७	२	आतीव	अतीव
१११	१७	३	सिद्धि	सिद्ध
११८	६०	४	र	व्यर्थ छप गया है
११८	६३	१	ही	रही
१२९	८	२	सर्व	सब
१२६	९	१	दुख	दु:ख
१२८	१७	४	धी	धीं
१३२	४४	२	दर्शन के	दर्शन को
१४१	३५	१	न्यारी	न्यारा
१४४	१२	३	सोची	सोचो
१४६	२५	२	लाचा	लाचार
१७८	६	३	मानो	मनो
१७९	१३	४	भागो	भगो
१९९	१३	३	रभ	भर
२०८	८	४	अशक्ति	अशक्त
२११	९	२	शोभते	शोभते
२२४	२४	१	सुझता	सूझता
२३९	४८	२	मवन	भवन
२४२	६६	४	जा	पूजा
२४३	१	२	संकल	संकल्प
२४४	७	३	सौहाद्र	सौहार्द्र
२४७	२२	१	ध्या	संध्या
२५१	४६	२	×	कुसुम-सा लगता नर साधु को।

विषय-सूची

गांधी-चरितामृत

प्रथम-सर्ग

(शैशव)

वंशस्थ

मुकुंद की सृष्टि समस्त मोहती,
अनादि से ही सब जीव मात्र को।
तथैव आकर्षित विज्ञ विश्व के,
विशिष्टता-वर्णन में लगे रहे ॥१॥

महीधरों के सुविशाल शीर्ष में,
कवीश की बुद्धि विभोर-सी रही।
वनस्थली की प्रति पुष्प-पंक्ति में,
कलाविदों की रम-सी गई कला ॥२॥

अनूप पत्रों पर की विचित्रता,
विशिष्ट चित्रावलि की मनोज्ञता।
विलोकते मोहित चित्रकार का,
वहीं रमा ध्यान हटा न लेश भी ॥३॥

गया कहीं जो मन रम्य कुंज में,
रमा वहीं बाहर हो सका नहीं।
विचित्र बल्ली पर मंत्र मुग्ध हो,
रसज्ञ के लोचन भूलते रहे ॥४॥

पयोद के श्याम अनूप वर्ण में,
रँगे नहीं क्या मन शीलवान के।
पयोधि की चंचल वारि-वीचि में,
कहाँ फँसे चित्त नहीं रसाल के ॥५॥

असंख्य तारागण को विलोकते,
थके सभी के युग-नेत्र सर्वथा।
न आदि का है जिनके पता कहीं,
न अन्त का भी कुछ अन्त है कहीं ॥६॥

लता-द्रुमों में रजनीश सौम्यता,
प्रसारता है हर ताप-खिन्नता।
चकोर के तुल्य रसज्ञ चित्त को,
विभोर है क्या करती न चन्द्रिका ॥७॥

सुरम्य सूर्योदय की सुलालिमा,
विभा कहाँ है भरती नहीं तथा।
सभी दिशाएँ कनकाभ रंग में,
समाज-आकर्षण हैं बनी हुई ॥८॥

प्रपात के सीकर संग खेल में,
सुरेश-धन्वा किरणें सँवारतीं।
समीप में लेखक शान्त चित्त हो,
कहीं सजाते कविता-कला नई ॥९॥

तड़ाग में नीरज के पराग से,
प्रमत्त होते दिन में मिलिन्द हैं।
स्वकीय गुंजार सुना समाज को,
समान ही वे रखते प्रसन्न हैं ॥१०॥

प्रभात से ही खग कूजते सभी,
दिशा गुँजाते कमनीय घोष से।
धरा-निवासी चिरकाल से सदा,
विचित्र नाना रव से प्रमुग्ध हैं ॥११॥

तरंगिणी की शुभ-धार में बही,
विशारदों की शुचि कल्पना नई।
अवश्य है चित्रण भव्य लोक का,
निमग्न हैं पंडित राज आज भी ॥१२॥

अपूर्व सन्ध्या छवि से न रीझता,
सुविज्ञ अल्पज्ञ मनुष्य कौन है।
पयोद-माला रवि-बिम्ब युक्त हो,
विमोह लेती अनुरक्त जीव को ॥१३॥

अनन्त है सौष्ठव पूर्ण विश्व का,
अपूर्ण है अंकन आदि काल से।
स्ववाटिका में जग-शोभनीयता,
विचारते मोहित कर्मचन्द्र थे ॥१४॥

अनूप शोभामय पुत्र को लिए,
प्रमुग्ध बाई पुतली वहाँ गयी।
निमग्न थे सृष्टि-छटा-पयोधि में,
जहाँ सुखी मोहन दास के पिता ॥१५॥

स्वनाथ के सौख्य-निधान अंक में,
सुशील गांधी सुत को दिया जभी।
प्रसन्नता में भर कर्मचन्द्र जी,
पुनः हँसाने हँसने लगे वहाँ ॥१६॥

शरीर-लावण्य विलोकते तथा,
नवीन पाते सुषमा मनोरमा।
सराहना थे करते स्वरूप की,
मनो दिखाते विधु से कृतज्ञता ॥१७॥

पिता स्वयं बालक संग खेलने
लगे, जगा शैशव-भाव चित्त में।
न जीतते थे उस बाल से, अहो,
विशेष आनन्द मिला विनोद में ॥१८॥

सदैव आभामय रूप देखते,
पिता विताते निज आयु मोद में।
त्रलोक का वैभव हेय था जभी,
उछालते लाल निहाल अंक में ॥१६॥

विनीत माता पुतली स्व बाल को,
दुलारती थी शुचि मातृ भाव से।
अतीव सौन्दर्य विलोक हर्ष से,
बखानती थी निज भाग्य को सदा ॥२०॥

अबोध गांधी करने लगे जभी,
विचित्र लीला सुललाम धाम में।
प्रसन्नता के सरिता-प्रवाह में,
नहा सभी ताप विहीन हो गए ॥२१॥

सभी वहाँ आकर योग्य लाल को,
निमग्न होते निज अंक में बिठा।
यही मनाते प्रभु से विनीत हो,
न साथ छूटे इस बाल का कभी ॥२२॥

अवश्य थी मोहन वे रूप सभा,
विमुग्ध होते तन-कांति से सभी।
विहंग नाना निज वैर भाव को,
बिसार निर्व्याज समीप शोभते ॥२३॥

भुजंग इत्यादि विषाक्त जीव भी,
कभी दिखाई पड़ते उसे कहीं।
नहीं सताता लवलेश था उन्हें,
महा दया थी उर में विराजती ॥२४॥

रमा हुआ था मन रम्य लोक में,
लता द्रुमों के कमनीय भाग में।
इसी लिए ही ऋतुराज ने स्वयं,
अतीव शोभा सब को प्रदान की ॥२५॥

जलाशयों से बह वायु आर्द्र हो,
अपूर्व ही शीतलता प्रसारती।
सुगंध की मादकता लिए हुए,
सदा बनाती उसको प्रमत्त थी ॥२६॥

विशाल पेड़ों पर से चली हुई,
थकी हुई थी वह वायु शान्तिदा।
इसी लिए मन्थर मंजु चाल से,
सुवाटिका में नित थी विराजती ॥२७॥

गुलाब, चम्पा, कचनार, केवड़ा,
प्रिया-सदा-सौरभ-भार से दबी।
वहाँ निराली करती हवा वहाँ,
अनूप था बालक खेलता जहाँ ॥२८॥

अगाध शोभा-निधि तैरते हुए,
कभी न होते जन चक्षु तृप्त थे।
तभी वहाँ मोहन दास दीखते,
जमी गिराते तरु पुष्प चाव से ॥२६॥

सहर्ष ले फूल उदार-भाव से,
बखानते मोहन बार बार थे।
सुगन्ध लावण्य विलोक संग में,
विमुग्ध होते बहुधा स्वचित्त में ॥३०॥

सुहावने सुन्दर रम्य फूल से,
कभी बनाते स्वयमेव हार थे।
स्वकंठ में डाल सगर्व मोहते,
समस्त नारी-नर, जीव मात्र को ॥३१॥

गिरे हुए शुभ्र मयूर पंख की,
विचित्रता को लख रीझते सदा।
सुकंठ से कोकिल कूकती कहीं,
प्रमत्त वाणी करती विभोर थी ॥३२॥

कहीं निराली तितली विलोकते,
अशंक लेते उसको कराग्र में।
परन्तु अत्याकुल देख छोड़ते,
अहो, दया बालक में अपार थी ॥३३॥

कभी न तोड़ा फल को स्वहस्त से,
न चोट दी पत्थर से रसाल को।
न पुष्प शाखा-च्युत बाल से हुआ,
हुई न पीड़ा जड़ को कुकर्म से ॥३४॥

जभी नहाने सर में गया तभी,
बचा बढ़ाता पद नीर-राशि में।
अहा, न कोई जल-जन्तु मात्र भी,
दबा अनायास विपत्ति में पड़े ॥३५॥

दयालुता को लख सौम्य मूर्ति की,
पड़ोस के बालक मित्र हो गए।
अनेक लीलामय खेल खेलते,
कभी न जाते तज संग भूल से ॥३६॥

विवाद होता उनमें कदापि जो,
तुरन्त एका करता कुमार था।
सदैव लेता वह पक्ष सत्य का,
इसी लिए आदर-पात्र हो गया ॥३७॥

महा निराली शिशु मंडली बनी,
त्रिलोक में भी उपमा नहीं मिली।
सुरेश सेजै सुर मध्य शोभते,
तथैव थे मोहन बाल-संग में ॥३८॥

सभी प्रशंसा करते जहाँ तहाँ,
सुरत्न पाया गुजरात देश ने।
हुए दयानन्द इसी प्रदेश में,
अलभ्य होते नर-रत्न हैं यहाँ ॥३९॥

जभी बड़ाई सुनती कुमार की,
प्रसन्न होती जननी स्वचित्त में।
महेश से थी वर माँगती सदा,
स्वदेश का हो सुत भक्त राम-सा ॥४०॥

कभी बुलाती सुत को समीप में,
उसे सुनाती सुख से कहानियाँ।
विचार अत्युत्तम ओज-पूर्ण हो,
इसी लिए संप्रति यत्न शील थी ॥४१॥

विशेष इच्छा जगदीश की हुई,
चरित्र निर्माण हुआ अपूर्व ही।
विलोक होते जन तुष्ट थे जिसे,
अनेक देते वर एक-एक से ॥४२॥

"निराशता में सुत हो दृढ़ व्रती,
प्रताप फैले जग में दिनेश-सा।
अटूट निष्ठा निज देश-हेतु हो,
स्वतंत्रता का वर-अग्र-दूत हो ॥४३॥

स्वलक्ष में हो ध्रुव-सा महाव्रती,
विराग में भी मिथिलेश तुल्य हो।
दयालुता में समकक्ष बुद्ध के,
सुभक्त प्रह्लाद समान सिद्ध हो ॥४४॥

प्रशांत वारीश-समान चित्त हो,
गिरीश-सा मानस भी विशाल हो।
सरस्वती से वरदान-युक्त हो,
समाज वाणी-वश हो क्षणैक में ॥४५॥

भुजा सदालंब रहे समाज की,
निराश नारी-नर को विराम दे।
पवित्र गंगा करती धरा यथा,
तथैव गांधी शुचि नाम भी करे" ॥४६॥

हितेच्छु-आशीर्वचन प्रभाव से,
विकास होने क्रमशः लगा तभी।
महा अचम्भा लख लोक को हुआ,
तुरन्त आये इस भाँति भाव ये ॥४७॥

सुधी नरों का कहना न टालते,
सहर्ष आज्ञा वह पालते सदा।
विनम्रता और अपार धीरता,
कुटुम्बियों को खलु मोहती रही ॥४८॥

द्विकाल संध्या करते सदैव थे,
कभी न पूजा विभु की विसारते।
विराजती थी हृदयस्थ कामना,
रमेश की भक्ति बनी रहे सदा ॥४६॥

त्रिलोक सम्पूर्ण विभासमान है,
अनन्त अद्वैत निवास मात्र से।
अनादि आत्मा अखिलेश अंश है,
विचार ऐसा उनमें हुआ नया ॥५०॥

समस्त हैं जीव समान सर्वथा,
कभी न कोई लघु है, न है महा।
कदापि कर्तव्य नहीं मनुष्य का,
यथेच्छ बन्दी पर जीव को करे ॥५१॥

तुरन्त मैना-शुक को किया विदा,
निराश बन्दी रह जो दुखी रहे।
अतीव दोनों मन में सराहते,
उड़े हवा में सहसा प्रसन्न हो।।५२।।

अनाथ कोई यदि शीत-काल में,
समीप जाता कँपता हुआ, अहो।
दरिद्रता को लख, आर्द्र भाव से,
वनम्र देते वर वस्त्र-अन्न थे।।५३।।

पिता निराले सुत की उदारता,
विलोक होते मन में विमुग्ध थे।
सगर्व माता निज भाग्य मानती,
अनूपता को लख भव्य पुत्र क।।५४।।

पिता धनी थे, कुछ भी कमी न थी,
समस्त थे साधन लब्ध सर्वथा।
दया निराली भुवनेश की हुई,
विलासिता से वह दूर ही रहे।।५५।।

कहा किसी ने 'वह सन्त हो गए,'
कहा किसी ने 'भगवान बुद्ध हैं।'
अतीव चिन्ता तब तात को हुई,
कहीं दुलारा सुत साधु हो नहीं।।५६।।

अनेक शृंगारिक रम्य चित्र को,
लगा दिया मोहन के निवास में।
असीम आनन्द विहार के लिए,
रखी गईं सुन्दर वस्तुएँ वहाँ।।५७।।

अनेक थे व्यक्ति विनोद के लिए,
सदा परीक्षा करते स्वभाव की।
विचित्र नाना इतिहास को सुना,
उसे रिझाते, रखते प्रसन्न थे ॥५८॥

प्रबन्ध होता नव गान का कभी,
कभी-कभी नाटक देखते तथा।
विहार में मानस रंग-सा गया,
विलास में जीवन बीतने लगा ॥५९॥

कभी हरिश्चन्द्र मनोज्ञ नाट्य को,
प्रशांत देखा अति दिव्य-भाव से।
प्रभाव ऐसा उसका पड़ा वहीं,
महानुरागी वह सत्य के बने ॥६०॥

असीम सम्मानित छात्र-वर्ग में,
सदैव थे मोहन संत भाव से।
चरित्र था निर्मल भव्य राम-सा,
कदापि आई न चरित्र-हीनता ॥६१॥

स्वपुत्र की तन्मयता विलोकते,
पिता महा आकुल हो विचारते।
कहीं निराला सुत छोड़ गेह को,
चला न जाए वन को भुला उन्हें ॥६२॥

अतः विचारा कर दें विवाह को,
तभी पड़ेगा वह मोह जाल में।
महा तपस्वी तप भूल से गए,
अवश्य नारी सँग में पड़े जभी ॥६३॥

हुआ जभी ज्ञात रहस्य पुत्र को,
कहा पिता से 'न विवाह मान्य है।'
पुनः पिता ने मृदु भाव से कहा,
'विचार ऐसा उनको अमान्य है' ॥६४॥

"विवाह होना अनिवार्य धर्म है,
अनादि से मानव मानते इसे।
परम्परा यों कुल की विशुद्ध हो,
भविष्य में भी चलती विना रुके ॥६५॥

दया, महा त्याग, उदार-भाव को,
स्वपूर्वजों से जन सीखते सदा।
चरित्र को हैं रखते समान ही,
न छोड़ते पूर्व अपूर्व आन को ॥६६॥

कुटुम्ब-लज्जा उर में बसी हुई,
अहो, बचाती सब को अधर्म से।
नहीं कभी सात्विक भाव लोभ से,
विनष्ट होता निज पूज्य से मिला ॥६७॥

यथैव आकर्षण मात्र से निरा,
अगण्य तारे नभ में रुके हुए।
तथा निवासी कुल-सूत्र में गुँथे,
समूल रचा करते सदैव हैं ॥६८॥

यथैव माला-च्युत हो सुमेरु भी,
स्वमान खोता क्षण में नितान्त है।
विभूति-शाली, कुल की परम्परा,
विसार, होता पल में विनष्ट है ॥६९॥

प्रकाश से हीन यथा स्वगेह में,
सुयोग्य पाता न अभीष्ट वस्तु है।
तथा प्रतापी तज-वंश-दीप को,
कृतार्थ होता न कदापि लक्ष्य में ॥७०॥

विवाह के बन्धन से विरक्त हो,
मनुष्य हो शंकर-वर्ण देश में।
अधर्म, अन्याय, अनीति को बढ़ा,
विनाश सारा करते समाज का ॥७१॥

बनी हुई है कुल-भावना जभी,
बना हुआ बांधव-भाव है तभी।
भयावने जीव समान अन्यथा,
मनुष्य होता अरि एक-एक का ॥७२॥

प्रथा न होती सुविवाह की यहाँ,
विलीन होती बस मातृ-भावना।
नितान्त छाती पशुता समाज में,
न मातृपूजा जग मध्य दीखती ॥७३॥

स्वबन्धु, भार्या, भगिनी, कुटुम्ब के,
समस्त सम्बन्ध बिसारते सभी।
सदा दिखाते बस स्वार्थ में सने,
नितान्त नारी-अभिधर्म मानते ॥७४॥

विवाह की सुन्दर रीति है चली,
इसी लिए भारत में अनादि से।
परम्परा में तुम भी चलो उसी,
स्वनाम को धन्य करो समाज में ॥७५॥

(उपेन्द्रवज्रा)

वही सदा है सुत भाग्य-शाली,
स्वतात का जो चरणानुरागी ।
बिना किसी तर्क विचार के ही,
स्वपितृ-आज्ञा-वश है धरा में ॥७६॥

अहो, भलाई उसकी हुई है,
पितानुयायी नित जो रहा है ।
यहाँ प्रतिष्ठा जन से मिली है,
रमेश से मुक्ति वहाँ मिली है ॥७७॥

कठोर आदेश सदा पिता का,
सहर्ष माना जग में जिन्होंने ।
वही हुए हैं बहु कीर्ति-शाली,
प्रभावशाली, धन-धान्य-शाली ॥७८॥

कराल आज्ञा नित तात की भी,
सहर्ष मानी अवधेश ने है ।
महा हुए आदृत भूनरों से,
त्रिलोक-स्वामी पद भी मिला है ॥७६॥

उदास, चिन्ता-रत ही दिखाना,
परार्थ में अश्रु सदा बहाना ।
न योग्य ऐसा सुत के लिए है,
पिता सुखी हों, करना वही है" ॥८०॥

उसास ली मोहन दास जी ने,
विवाह-शिक्षा उनको न भाई ।
परन्तु हो मौन, गए वहाँ से,
स्वजीत मानी उनके पिता ने ॥८१॥

तृतीय सर्ग

विवाह

[उपेन्द्र वज्रा]

महा गुणी उत्तमचन्द गांधी,
दिवान जूनागढ़ राज्य में थे।
हुए छ मेधायुत पुत्र नामी,
प्रताप फैला जिनका धरा में ॥१॥

उन्हीं सुतों में बस एक ऐसा,
हुआ प्रतापी वर पुण्य-शाली।
रियासतों में परमाधिकारी,
समान कोई जिसके नहीं था ॥२॥

मिली प्रतिष्ठा उसको प्रजा से,
महीप के तुल्य महा सुखी था।
विवाह भी चार हुए सुधी के,
कमी रही जीवन में न कोई ॥३॥

हुई न संतान परन्तु कोई,
कुटुम्ब का अंत समीप ही था।
चतुर्थ नारी पुतली इसी से,
रमेश-आराधन में लगी थी ॥४॥

रमेश ने दीं शुभ पुत्रियाँ दो,
महा यशस्वी सुत तीन ज्ञानी।
उन्हीं सुतों में अति तेज शाली,
अहो! हुए मोहनदास गांधी ॥५॥

रही न सीमा सुख की, पिता ने
लुटा दिया था धन याचकों में।
विषाद, चिंता-दुख को भुलाया,
अलभ्य चिंता-मणि हाथ आया ॥६॥

स्व बाल-लीला नित देखते ही,
विनोद में वर्ष समाप्त होते।
नहीं व्यथा के दिन बीतते हैं,
न ज्ञान होता सुख के दिनों का ॥७॥

वहाँ तभी गोकुलदास के भी,
हुई विभा-सी कमनीय कन्या।
असीम शोभा-निधि बालिका थी,
त्रिताप को थी हरती प्रभा से ॥८॥

कहा किसी ने, "वह है उमा-सी,
रमा स्वरूपा, जगदम्बिका-सी।
छटा बढ़ेगी जग-नारियों की,
पवित्र होगी उससे धरित्री ॥९॥

स्वगेह-आनन्द विसार सारा,
समाज-सेवा करती रहेगी।
यथैव सीता पति-सेविका थीं,
तथैव श्रद्धा उसमें रहेगी ॥१०॥

हुई, न होगी इस भाँति नारी,
वसुन्धरा में युग में किसी भी।
समाज पूजा उसकी करेगा,
अनन्य माता जग की बनेगी ॥११॥

विवाह के योग्य हुई सुता ज्यों,
महा समस्या तब आ खड़ी थी।
कहीं न पाया वर, भामिनी से,
कहा दुखी गोकुल दास जी ने ॥१२॥

"प्रिये, गया था वर-कामना से,
न योग्य जामातृ मिला कहीं भी।
विवाह होता समकक्ष ही में,
निदान आया निज धाम को मैं ॥१३॥

कहीं मिला सद्गुणवान कोई,
विवेक-शाली वर पूर्ण ज्ञानी।
अतीव रोगी, तन-क्षीण देखा,
निराश लौटा उस गेह से भी ॥१४॥

शरीर से सुन्दर शक्तिशाली,
कहीं मिला है वर भाग्य से ही।
न उच्च शिक्षा उसको मिली है,
विचित्र केकी, बक तुल्य जानो ॥१५॥

अनेक ऐसे वर भी मिले हैं,
विशिष्ट विद्यायुत, वीर्य-शाली।
परन्तु सम्पत्ति-विहीनता से,
विवाह कैसे कर दूँ सुता का ॥१६॥

अनेक देखे वर रूप-शाली,
अरोग जो वैभव शील, नामी।
चरित्र से वे अति ही गिरे हैं,
मनुष्यता है उनसे लजाती ॥१७॥

अनेक लावण्य-निधान, मानी,
धनी मिले हैं वर बुद्धि वाले।
सुकर्म में जो रत ब्रह्मचारी,
विवाह ऐसा स्थिर हो न पाया ॥१८॥

महाभिमानी वर के पिता हैं,
न सभ्यता से मुझसे मिले हैं।
समानता में अति हेय माना,
सुता-पिता होकर तुच्छ था मैं ॥१६॥

दहेज की भीषणता कहीं है,
धनाढ्य नामी भय भीत होते।
अनेक ऐसी सुकुमारियाँ हैं,
विवाह आजीवन है न होता ॥२०॥

करी, तुरंगादि-समान लोभी,
पिता सदा संतति बेचते हैं।
सहर्ष लक्ष्मी पति सम्पदा दे,
सुतार्थ जामातृ खरीदते हैं ॥२१॥

यथेष्ट लक्ष्मी जिनके नहीं है,
विवाह होता न कभी सुता का।
कुमारियाँ वे अविवाहिता ही,
स्वजन्म को हैं दुख में बिताती ॥२२॥

बुराइयाँ हैं इससे सहस्रों,
समाज-उत्थान रुका हुआ है।
कहीं कुमारी विष खा मरी है,
समाधि लेती जल में कहीं हैं ॥२३॥

शरीर में अग्नि लगा, स्वयं ही,
अनेक देवी मरतीं क्षणों में।
हताश ऐसी अबला दिखातीं,
स्वमान-रक्षा कर जो न पातीं ॥२४॥

निदान लज्जा उनकी गई है,
अबोध, हत्या शिशु की हुई है।
कुलीनता की फिर भी दुहाई,
सगर्व देते उनके पिता हैं ॥२५॥

अनेक वैवाहिक कुप्रथायें,
नहीं मिटेंगी यदि बंधुओं से।
विनष्ट हिन्दू अविलंब होंगे,
वसुन्धरा से ध्रुव सत्य जानो" ॥२६॥

समाज की घातक रूढ़ियों से,
महा दुखी दम्पति हो रहे थे।
तभी प्रिया ने निज कामना को,
समक्ष रक्खा अति नम्रता से ॥२७॥

"इसी पुरी में सबसे निराला,
विराजता है वर कान्ति वाला।
यही सदिच्छा सब के उरों में,
विवाह हो मोहन से सुता का ॥२८॥

विनीत मेरी शुभ कामना है,
रमेश से भी यह याचना है।
नवीन सम्बन्ध जुड़े इसी से,
प्रताप दोनों कुल का बढ़ेगा" ॥२६॥

महामना गोकुल दास जी ने,
कही व्यथा मोहन के पिता से।
अतीव दुःखी उनको निहारा,
विवाह माना पल में उन्होंने ॥३०॥

प्रसन्न दोनों तब हो रहे थे,
नहीं समाता सुख था दृगों में।
स्वगेह में गोकुल दास जी ने,
तुरन्त ही जाकर सूचना दी ॥३१॥

अहा, तभी मोहन के पिता के,
उमंग को कौन बता सकेगा।
विवाह का उत्सव देखने को,
स्वपुत्र के, उत्सुक जो सदा हैं ॥३२॥

अपूर्व सम्वाद मिला सभी को,
अपार उल्लास भरा उरों में।
विलोक बारात विमुग्ध होंगे,
समस्त उत्कण्ठित हो रहे थे ॥३३॥

सुधीन्द्र, लक्ष्मी पति, नाम धारी,
बने बराती अति चाव से थे।
अपूर्व शोभा निधि छा रही थी,
विचित्र बारात सजी पुरी में ॥३४॥

सवारियों की गणना नहीं थी,
समोद बैठे जिनमें बराती ।
अनेक थे शोभित मोटरों में,
छटा बढ़ाते अपनी विभा से ॥३५॥

गजेन्द्र के ऊपर शोभते थे,
धनाढ्य मानी जन देवता से।
सुरूप-लावण्य विलोकते ही,
विमुग्ध होती पुर देवियाँ थीं ॥३६॥

तुरंग-आरूढ़ लगाम खींचे,
युवा निराले पथ में दिखाते।
कभी हवा में उड़ते क्षणों में,
नहीं दिखाई पड़ते किसी को ॥३७॥

सभी बढ़े ज्यों अति कामना से,
अनूप पूजा प्रति द्वार को थे।
प्रवाह ऐसा उमड़ा तभी था,
मनों चढ़ाई रिपु की हुई हो ॥३८॥

अबोध बच्चे पथ छोड़ भागे,
अशक्त का मर्दन हो गया था।
सुबुद्धिशाली कुछ दूर से ही,
महा नदी की छवि देखते थे ॥३९॥

सुवाद्य नाना विधि से बजाते,
गुँजा दिया पंथ विशारदों ने।
मनुष्य घेरे सुनते जिसे थे,
कुरंग वीणा सुनते यथा हैं ॥४०॥

सुमार्ग में कौतुक को दिखाते,
विचित्र ही आतिश छूटती थी।
कुटुम्ब ले मानव देखते थे,
अपार मेला लग सा रहा था ॥४१॥

सघोष गोले दगते जभी थे,
तुरन्त कर्णों पर हस्त होते।
अतीव चिल्ला कर बाल रोते,
सखेद संरक्षक लौट जाते ॥४२॥

अचूक अग्न्यस्त्र समान छूटे,
बरूद के बाण अहो! धरा से।
अनंत नक्षत्र समूह मानो,
तुले हुए थे जन जीतने को ॥४३॥

बरूद की फूल-झड़ी लगी थी,
मधूक या फूल गिरा रहे थे।
अनेक छूटीं चरखी अनोखी,
मनो बने मण्डल अग्नि के थे ॥४४॥

विचित्र भूलों पर भूलती थीं,
बरूद से ही परियाँ बनी जो।
विनाश होता उनका पलों में,
अनित्य है विश्व मनो बतातीं ॥४५॥

विमान नाना नभ में दिखाते,
विनष्ट होते क्षण में बुझाते।
विमुग्ध हो दर्शक सोचते थे,
विचित्र जादू अथवा हवाई ॥४६॥

प्रदीप्त गैसें जलती निशा में,
दिखा रही कौतुक थीं अनोखे।
विचार सूर्योदय-कांति मानो,
उलूक जा कोटर में छिपे थे ॥४७॥

वियोग से जो दुख भोगते थे,
नितांत माना दिन ही उन्होंने।
प्रसन्नता में भर कोक कोकी,
वियुक्त संयुक्त हुए क्षणों में ॥४८॥

प्रमत्त हस्ती पर बैठ दाता,
पिता लुटाते धन याचकों को।
सतीत्र वे दौड़ उठा रहे थे,
अनूप थी होड़ लगी सभी में ॥४९॥

उछालते ही धन को करों में,
अनेक लेते गिरने न देते।
मनुष्य लम्बे वपु लाभ लेते,
हताश छोटे मुख देखते थे ॥५०॥

विचित्र वर्षा धन की हुई थी,
अनेक मुद्रा सब भाँति के थे।
अभेद बाँटा उनको सभी में,
मिली नहीं किन्तु समान मुद्रा ॥५१॥

वसुन्धरा में सब वस्तुएँ हैं,
अहो, महा अन्तर भोग में ही।
अनेक लक्ष्मी पति दीखते हैं,
अनेक हा, भोजन भी न पाते ॥५२॥

जलाशयों में जल की न सीमा,
नहीं किसी को प्रतिबन्ध कोई।
परन्तु जैसा जल-पात्र होता,
मनुष्य पाते उतना वहाँ से ॥५३॥

मिली अशर्फी, कुछ को अधन्ना,
मिली अठन्नी, कुछ को अधेला।
मिली किसी को दस पांच मुद्रा,
हुई किसी की हत क्षीर-मुद्रा ॥५४॥

अपार कोलाहल हो रहा था,
उपस्थितों की गणना नहीं थी।
समक्ष कन्या-गृह के पधारे,
सभी महा हर्षित हो रहे थे ॥५५॥

कला-सजे चित्र टँगे हुए थे,
सभी बने चित्र विलोकते थे।
नई नई सुन्दर झालरों में,
मनुष्य के लोचन झूलते थे ॥५६॥

यथेष्ट सत्कार विशिष्ट-सेवा,
बरात की गोकुल दास ने की।
गिरा कभी क्या कह भी सकेगी,
अलभ्य सुव्यञ्जन जो बने थे ॥५७॥

समाप्त ज्यों थी शुभ द्वार पूजा,
विवाह आरम्भ हुआ सुखी से।
विराजती थी वर साथ कन्या,
सुरेन्द्र के साथ शची मनो थी ॥५८॥

सुकर्मकाण्डी वर पंडितों ने,
प्रभावशाली शुभ यज्ञ से ही।
विवाह आरम्भ किया, दिशाएँ
सुगन्ध से संकुल हो रही थीं ॥५९॥

वधू तथा मोहन मंत्र द्वारा,
प्रसन्न हो आहुति दे रहे थे।
तथा प्रतिज्ञा करते वहाँ थे,
विवाह की रीति यथा लिखी है ॥६०॥

"मनीषियो, मानस भी हमारे,
मिले हुए वारि समान होंगे।
सदा रहेंगे सुख, शांति ही से,
न कोप-ईर्ष्यानल में जलेंगे ॥६१॥

सुमातरिश्वा तन-वारियों को,
यथा सदा है प्रिय आज दोनों।
अभिन्न हो प्रेम-सुरज्जु से ही,
बँधे रहेंगे नित दूसरे से ॥६२॥

यथा विधाता, जग मित्र दोनों,
मिले हुए हैं जल-वीचि-सा ही।
शरीर से भिन्न तथैव दोनों,
विभिन्नता खोकर एक होंगे" ॥६३॥

अनेक संकल्प किए गए थे,
समक्ष सम्पूर्ण सभासदों के।
कहा वधू से वर ने, कृशांगी,
सुनो हितैषी उपदेश मेरा ॥६४॥

"पतिव्रता हो कर नाथ-सेवा,
समोद सीता-सम जो करोगी।
सुकीर्ति होगी जग में तुम्हारी,
महा मनीषी सुत भी मिलेंगे ॥६५॥

वरानने, वैभव युक्त होगी,
अनूप सौभाग्यवती बनोगी।
भुजा तुम्हारी निज हस्त में ले,
अभेद संगी अपना बनाता ॥६६॥

वसुन्धरा में पति एक मैं हूँ,
यही तुम्हारा अभिमान होगा।
विचार मेरा ध्रुव-सा रहेगा,
अनन्य नारी तुम एक ही हो ॥६७॥

अतुल्य दासी तुम आज से हो,
अपूर्व मैं 'दास' बना हुआ हूँ।
सदस्य, साक्षी प्रण के हमारे,
सदा रहेंगे महती सभा के ॥६८॥

न छोड़ता ज्यों ध्रुव ठौर को है,
तथैव सम्बन्ध बना रहेगा।
अरुन्धती-सा दृढ़-भाव होगा,
शिला, धरा के सम धैर्य होगा" ॥६९॥

विवाह सम्पादित हो गया ज्यों,
दिया सुआशीष उपस्थितों ने।
"शतायु हों दम्पति भाग्यशाली,
चरित्र हो पावन पुण्यशाली" ॥७०॥

अमूल्य रत्नादि मिले वहाँ से,
विदा हुए मोहन दास गाँधी।
अतीव आनन्दित थे बराती,
अपार-सेवा-उपहार से ही ॥७१॥

मुहूर्त आया दुहिता-विदा का,
घटा दुखों की जन मध्य छाई।
सभी निराशामय हो रहे थे,
अमूल्य छूटी निधि जा रही थी ॥७२॥

अधीर कस्तूर महा दुखी थी,
न जानती थी गृह भिन्न होगा।
जहाँ सभी बान्धव छूटते थे,
असह्य उद्वेलन क्यों न होता ॥७३॥

सुअंक में व्याकुल लेटती थी,
न छोड़ती थी प्रिय को गले से।
कुटुम्बियों से वह चाहती थी,
न भूल जायें ममता प्रिया की ॥७४॥

सभी लगाते उसको उरों से,
पुनः हटाते निज पास से भी।
हताश जाती पर अंक में थी,
कभी कभी मूर्च्छित हो चली थी ॥७५॥

असीम आशा उसको बनी थी,
उसे कहीं आश्रय भी मिलेगा।
यथा नदी में नर डूबते को,
प्रमोद देता तृण का सहारा ॥७६॥

स्वभाग्य होता विपरीत है तो,
न कार्य आते प्रिय हैं कभी भी।
अतः सभी ने उस बालिका को,
प्रबोध दे, व्याकुल हो हटाया ॥७७॥

पड़ी पिता के फिर अंक में जा,
विलाप में गोकुलदास डूबे।
दुखी सुता को उर से लगाया,
उसे भिगोया निज अश्रुओं से ॥७८॥

कहा पिता ने, "गुणशील बेटी,
अधीर हो क्यों इतना रही हो।
भुला न दूँगा तुमको सदा को,
कभी कभी मैं मिलता रहूँगा" ॥७६॥

नहीं मिला आश्रय भी पिता से,
अपार दुःखाम्बुधि बाढ़ आया।
समीप माता करुणामयी के,
विलाप मग्ना वह शीघ्र भागी ॥८०॥

अधीर माँ ने बढ़ती सुता को,
महा दुखी हो उर से लगाया।
कहा कि "जाने तुम को न दूँगी,
उर स्थली में नित ही रखूँगी ॥८१॥

समीद पाला तुमको बढ़ाया,
न दूसरा आकर छीन लेगा।
विमूढ़ माता वह कौन होगी,
महा निराली निधि को तजेगी ॥८२॥

विलाप भूलो, मम बात मानो,
मुझे बड़ा ही दुख हो रहा है।
न बात मेटी तुमने कभी भी,
न बंद होता किस हेतु रोना ॥८३॥

महा सहारा तुमसे मुझे था,
विराम देती प्रतिकार्य में थी।
न मैं तुम्हें खोकर जी सकूँगी,
स्वजीव खो क्या नर जी सके हैं" ॥८४॥

मिटा मनस्ताप, विषाद सारा,
उदार माता उपदेश से ही।
अटूट रोना उसका रुका, माँ,
स्वअंक में ले इस भाँति बोली ॥८५॥

"अनादि से रीति यही रही है,
विभूति कन्या पर वंश की है।
वियोग होता जननी-सुता का,
अवश्य पुत्री! यह बात जानो ॥८६॥

सुनो, मुझे जो कुछ है बताना,
वियोग को सत्वर भूल जाना।
विचार लाना न कभी यहाँ का,
स्वगेह भर्ता-गृह मान लेना ॥८७॥

स्वनाथ सेवा करना सदा हो,
कदापि आलस्य नहीं दिखाना ।
प्रसन्नता हो जिस कार्य से ही,
समोद पूरा करना उसी को ॥८८॥

स्वसासु सेवा करना सुधी से,
सहर्ष आज्ञा पर चित्त देना ।
पिता तुम्हारे पति के पिता हैं,
असीम श्रद्धा उनमें दिखाना ॥८६॥

सुशील लज्जा युत हो बड़ों से,
विशिष्ट शिक्षा उपदेश लेना ।
विनोद से ही लघु को रिझाना,
कुटुम्बियों की प्रिय पात्र होना ॥९०॥

मनोज्ञ बेटी मुझ से विदा ले,
सहर्ष जाओ नव कामना से ।
पवित्र, साध्वी, जग-वंदिता हो,
प्रताप दोनों कुल का बढ़ाओ" ॥९१॥

(द्रुत विलम्बित)

विलपती पति के गृह को गयी,
जनक-बान्धव माँ सब छोड़ती ।
विकल था कुल गोकुल दास का,
करम चन्द कुटुम्ब निहाल था ॥९२॥

तृतीय सर्ग

प्रवास

[द्रुत विलम्बित]

अहह, धाम निनादित हो गया,
नव वधू पद-नूपुर शब्द से।
मुदित थीं कुल की सब देवियाँ,
परम गौरव था उनका बड़ा ॥१॥

गुरु तथागत और यशोधरा,
भवन शोभन थे जिस भाँति ही।
निज वधू सँग मोहन दास ने,
स्वजन को अति रंजित था किया ॥२॥

दिवस बीत गया, रजनी हुई,
कब, नहीं उनको कुछ ज्ञान था।
शरद बीत गए, रस रंग में,
पर न वे निकले निज धाम से ॥३॥

युगल दम्पति के रस-राज का,
कथन हो सकता किस भाँति है।
युवक वृन्द, इसे बस जान लें,
उचित वर्णन है इसका नहीं ॥४॥

जब दिवंगत तात हुए तथा,
विभव हीन हुई गृह की दशा।
परम चिन्तित मोहन हो गए,
सरल नेत्र खुले उस धीर के ॥५॥

अटल निश्चय सत्वर हो गया,
वह वकील बनें कुछ वर्ष में।
धन उपार्जन से दुख दीनता,
तुरत दूर करें निज वंश की ॥६॥

बस अठारह की वर आयु थी,
जब चले पढ़ने इँगलैण्ड को।
विपुल कातर हो जननी तभी,
सरल मोहन से कहने लगी ॥७॥

"हृदय कंज अधीर बना मुझे,
तुम विलायत को अब जा रहे।
सुत-वियोग मुझे कब सह्य है,
निज शरीर न जीवन हीन हो" ॥८॥

तरल अश्रु भरे निज नेत्र में,
व्यथित हो विनयी सुत ने कहा।
"बहुत आकुल हो जननी नहीं,
गमन के प्रति आज निदेश दो ॥९॥

"तुम समझ रहो मम नेत्र के,
परम हर्ष मुझे, पर क्या करूँ ।
कठिन संकट काल विचार मैं,
हृदय वज्र बना कर भेजती ॥१०॥

सुत, अबोध अभी सुकुमार हो,
जगत का न तुम्हें कुछ ज्ञान है।
जलधि पार करो इस आयु में,
सहज शक्ति नहीं जिससे कहूँ ॥११॥

पर मुझे निज धर्म बता रहा,
हृदय पत्थर तुल्य कड़ा करूँ।
सुत-वियोग सहूँ जिस कष्ट को,
सह सके न अहो, अवधेश हैं ॥१२॥

भवन को तज जो कुछ दूर भी,
सुहृद मंडल छोड़ गया नहीं।
फिर उसे किस साहस से कहूँ,
दुखद दूर विदेश-निवास को ॥१३॥

भुवन में छल छिद्र भरा हुआ,
स्वमन है डरता इस घात से।
शिशु विलायत जो पढ़ने गए,
बन गए बस साहब वे सभी ॥१४॥

स्वकुल-रीति भुला कर सर्वथा,
तुम पढ़ो न, मुझे यह मान्य है।
सतत भारत-गौरव-मान हो,
प्रिय रहें इसकी वर रीतियाँ ॥१५॥

सुत, सुनो मुझसे उस देश में,
परम रूपवती वर मेम हैं।
युवक जाकर भारत देश से,
न बचते उनके छल छद्म से ॥१६॥

सुपथ हीन वहाँ बनना नहीं,
सुभग पाठ पढ़ा कर भेजती।
सहज भारत का यह धर्म है,
नर नहीं लखते पर दार को ॥१७॥

अखिल भारत में शुभ देवियाँ,
विपुल हैं जिनकी निज धारणा।
वर विवाह हुआ जिससे वही,
सुनर है, सुर है, अवतार है ॥१८॥

गुणवती, बहु लक्षण-शालिनी,
सुरमणी, निज जीवन-संगिनी।
यदि मिली उसको न बिसारना,
समझना अपना चिर अंग ही ॥१६॥

अति विशुद्ध विचार बने अतः,
नियम संयुत भोजन मान्य हो।
घृणित मांस नहीं तुम भूल से,
ग्रहण तात, कभी करना वहाँ ॥२०॥

शहद, दूध तथा फल आदि से,
वर विचार, शरीर अरोग हो।
बदन-दुर्बलता, कुचरित्रता,
विकसती मद-सेवन से, सुनो ॥२१॥

नर वहाँ करते मद पान हैं,
ग्रहण तात नहीं करना उसे।
हरण है करती वह बुद्धि को,
विभव को, बल को, कुल-धर्म को ॥२२॥

यदि तुम्हें कुछ भी अभिलाष है,
भुवन में तुम गौरववान हो।
तब कदापि असत्य न बोलना,
बचन से, मन से, प्रिय सत्य हो" ॥२३॥

चरण में नत हो सुत ने कहा,
"परम धन्य हुआ उपदेश से।
कथन ये रवि तेज समान ही,
स्वपथ के तम को हरते रहें" ॥२४॥

पति वियोग असह्य विचारती,
विकल दुःखित मोहन की प्रिया।
स्वमन में अति तर्क वितर्क थी,
अतुल ही करती निज कक्ष में ॥२५॥

सहज नाथ रुकें निज धाम में,
इस विचार-महोदधि में पड़ी।
जब उपाय न सूझ पड़ा उसे,
चरम विह्वल कातर हो उठी ॥२६॥

विरह में अति पीड़ित रात्रि में,
वह कभी कहती निशि से यही।
तुम करो सहयोग विपत्ति में,
विरह-अंबुधि पार करूं, निशे ॥२७॥

लिखित है यह पावन शास्त्र में,
गमन कार्य करो निशि में नहीं।
तुम न आज विहान करो अतः,
पति रुकें सँग में, न वियोग हो ।।२८।।

वह विलोक घड़ी कहती कभी,
मम दशा सुन लो चिर संगिनी।
विपति में सब लोग सहायता,
सुहृद की करते, निज जाति की ।।२६।।

यदि रुको तुम शीघ्र बढ़ो नहीं,
सहज में बस सिद्ध अभीष्ट हो।
शुभ मुहूर्त चला जब जायगा,
पति पुनः घर में रुक जायँगे ।।३०।।

चतुर शारद मानस-हंसिनी,
कर अनुग्रह युक्ति सुझाइये।
गमन को कटि बद्ध विभात में,
सरल वल्लभ को घर रोक लूँ ।।३१।।

विवशता लख आज दया करें,
सुहृद-मानस को अपनाइए।
स्वमति से पति की मति फेरिए,
विरति हो उनको निज लक्ष्य से ।।३२।।

वह दिवाकर से कर जोड़ती,
अधिक कातर हो कहती यही।
विधु नहीं निकलें कल पूर्व में,
ध्रुव निशासम हो निशि आज की ।।३३।।

विनय जो प्रभु ने यह मान ली,
मम भला, सँग में हित आप का।
विषम आतप से बच जायँगे,
विरह-ताप न दे सकता मुझे ॥३४॥

वह पुनः मन में सुर-राज से,
विनय थी करती नत-शीश हो।
अतुल नीति-विशारद आप हैं,
सफल नित्य हुए निज लक्ष्य में ॥३५॥

अब दया अबला पर हो, प्रभो,
मम सहाय करो वर बुद्धि से।
जलद को यदि सत्वर भेज दो,
सहज में शुभ सिद्धि मुझे मिले ॥३६॥

गमन है रुकता जल-पात से,
चल रही जन-मध्य परम्परा।
गगन में जल-भू बस देखते,
हृदय-वल्लभ जा सकते नहीं" ॥३७॥

दुख-पयोनिधि में अवगाहती,
व्यथित थी महिला मन में महा।
निकट आकर मोहन ने तभी,
अचल लक्ष्य कहा हँसते हुए ॥३८॥

श्रवण में शर तुल्य लगे, अहो,
वचन जो निकले मुख-कंज से।
अति अधीर हुई पद-पद्म में,
पतित हो पति से कहने लगी ॥३९॥

"वदन से प्रतिबिम्ब कभी नहीं,
विलग हो सकता जब है प्रभो।
किरण भास्कर को तज दूर में,
टिक नहीं सकती पल मात्र भी ॥४०॥

प्रकृति में पति से अनुराग है,
तब कहीं नर है जड़ से गिरा।
बस नहीं यह सम्भव है कभी,
क्षण वियोग सहूँ निज नाथ का ॥४१॥

वचन-बद्ध हुए प्रभु आप थे,
अनल सम्मुख यज्ञविधान में।
विलग दम्पति हो सकते नहीं,
अनल-आतप सदृश विश्व में ॥४२॥

वचन क्या वह पालन हो रहा,
सहज में हँसते अब तोड़ते।
कथन, धीर सुधी कब भूलते,
प्रखर संकट या सुख-राशि में" ॥४३॥

विरह-पीड़ित आकुल देखते,
परम विह्वल मोहन हो गए।
मधुर भाषण से फिर दार की,
विकलता पल में हरने लगे ॥४४॥

"सतत मानस-कंज विहारिणी,
विरह को लख मानस खिन्न है।
विगत ज्ञान, न चिंतन शक्ति है,
उचित धर्म नहीं अब सूझता ॥४५॥

पर मुझे इतिहास बता रहा,
विरह से पथ वंचित हो नहीं।
अमर हैं नर वे इस विश्व में,
सहज ही जिन को प्रिय लक्ष्य था ॥४६॥

इस लिए, तव धर्म यही, सुनो,
नित सहायक हो पति-कार्य में।
यह पुरातन की वर-रीति है,
सुखद भाव भरे इस तथ्य में ॥४७॥

अतुल शक्ति-मयी यह भावना,
समय बंधन से स्थल से परे।
कमल है जल में, रवि, नाक में,
कब कमी अनुराग-विकास में ॥४८॥

गगन में जल-भू लख सर्वदा,
परम मत्त रहें बन के शिखी।
अचल हो वर चन्द निहारते,
प्रिय चकोर सुजीवन वारता ॥४९॥

कुमुद पुष्कर में खिलते, अहो,
शशि नभस्थल में रमता सदा।
पर न अन्तर है अनुरक्ति में,
सतत वे रहते अति दूर हैं ॥५०॥

यदि नहीं रहता, फिर भी, प्रिये,
कुछ विचार करो न वियोग का।
हम कदापि नहीं कुछ दूर हैं,
यदि बना रहता चिर भाव है ॥५१॥

समय बंधन में रहता नहीं,
यह निरन्तर बीत रहा, सुनो।
विरह काल बिता कर शीघ्र ही,
फिर सदा रहना तव संग में ॥५२॥

तनय की मुखकान्ति निहारते,
मुदित काल समाप्त करो यहाँ।
विरह का भय लेश न हो तुम्हें,
हृदय-बंधन से हम बद्ध हैं ॥५३॥

यदि तुम्हें फिर भी कुछ कष्ट हो,
मधुर पत्र मुझे लिखना, भला।
अतुल शान्ति तुम्हें जिससे मिले,
सुख मिले मुझ को पर-देश में ॥५४॥

इस लिए तुम हर्षित हो, प्रिये,
विकलता तज आज विदा करो।
स्वपति को शुभ भारत देवियाँ,
'समुद सत्पथ में नित भेजतीं'' ॥५५॥

विधि विधान कभी टलता नहीं,
स्वमन में यह निश्चित हो गया।
हृदय को पवि तुल्य बना लिया,
स्वपति को अनरुक विदा किया ॥५६॥

चतुर अग्रज के सँग गेह से,
तुरत मोहन जा कर बम्बई।
कुछ बिता कर काल वहाँ, चले,
व्यथित हर्षित हो जलयान से ॥५७॥

"जल तरंगित था सलिलेश का,
अति विशेष मनो उस काल में।
चरण के रज को वर देव के,
जलधि था अति आकुल चित्त में ॥५८॥

बहुत ही हिलता जनयान था,
पवन की गति से, अथवा कहीं।
जगत का बहु भार लिए हुए,
अधिक था कँपता उस काल में ॥५९॥

उदधि के जल में रमणीयता,
छहरती सविशेष विचित्र थी।
अपितु मोहन भव्य शरीर ही,
सलिल में प्रतिबिम्बित था हुआ ॥६०॥

अति अगाध असीम नदीश में,
लहर थी उठती गिरती, अहो।
विविध भाँति विचार मनुष्य के,
हृदय में बनते मिटते सदा ॥६१॥

उदधि के गति में वह शक्ति थी,
बस डुबा सकती बसुधैव को।
सहनशील मनुष्य समान ही,
वहन था करता पर-भार को ॥६२॥

रजनि में शशि तारक मण्डली,
लहर में करती वर नाट्य थी।
लख जिसे कहते सब लोग थे,
गगन है उतरा सलिलेश में ॥६३॥

नमक मिश्रित था जल, सिन्धु का,
पुरुष पी सकते उसको न थे।
कृपण के धन से जिस भाँति ही,
जगत का कुछ लाभ न है कभी ॥६४॥

किरण से दिन में वर ऊर्मियाँ,
सहज हेममयी बनतीं यथा।
अधम पूजित साधु सुवेश से,
भुवन में रहते कुछ काल ही ॥६५॥

सुखद काल बिता कर मार्ग में,
अति उमंगित मोहन दास जी।
भवन से बहु दूर विदेश में,
पहुँच संभ्रम में रहने लगे ॥६६॥

सकल थे रत मांस शराब में,
बहुत दुःखित मोहन चित्त था।
सरल सात्विक भोजन के बिना,
प्रथम ही उपवास हुए कई ॥६७॥

युवक शिक्षित में परदेश के,
कपट दम्भ भरा अभिमान था।
नियम संयम से अति दूर वे,
मधुर जीवन का सुख भोगते ॥६८॥

तरुण मोहन के गृह पास में,
छविवती युवती मन मोहिनी।
विकल थी करती जन को सभी,
सहज ही सहसा सुकटाक्ष से ॥६९॥

कमल के भ्रम में फिरते सदा,
नयन को लख आ अलि पास में।
सुभग आनन को शशि मानते,
न तजते उसको सुचकोर थे ।।७०।।

सहज विद्रुम को दशनावली,
विफल थी करती निज कांति से।
शुक सदा रहते लख नासिका,
मधुर बिम्बक शोभित जानते ।।७१।।

कटि-विभूति सुनी, वन-केसरी,
चल दिया तज पावन धाम को।
सुगम चाल निहार मरालिनी,
विमुख हो पर-देश चली गयी ।।७२।।

नित निशाकर कंज-समूह का,
दलन है करता निज कांति से।
पर सदा इसके प्रतिकूल ही,
युवति-आनन में जन देखते ।।७३।।

मुख-सुधाकर सम्मुख सर्वदा,
कमल-लोचन थे खिलते, अहा।
दिवस में खिलते नव कंज हैं,
विकसते अति थे निशि में वहाँ ।।७४।।

उदित भास्कर के रहते हुए,
विभव है छिनता रजनीश का।
पर वहाँ दिन में शशि देखते,
किरण-संयुत अद्भुत नारि में ।।७५।।

चमकती चपला न कभी कहीं,
जलद-हीन खमण्डल मध्य में।
पर निरभ्र वहाँ सब देखते,
सतत थे चपला उस रूप में ॥७६॥

अधिक मानवती निज रूप से,
मन-पतंग जलाकर नित्यशः।
वह समोद युवा-जन-यूथ में,
विचरती फिरती कुल-मान खो ॥७७॥

पर विवाह हुआ उसका न था,
वह विमोहित मोहन से हुई।
स्वप्न में वह नित्य विचारती,
हृदय वल्लभ मोहनदास हों ॥७८॥

इस लिए उसने निज लक्ष्य को,
बहुत शांत निवेदित ही किया।
"प्रभु विवाह करें मम संग में,
बस महा हित है इस कार्य में" ॥७९॥

पर न उत्तर मोहन ने दिया,
हठ न छोड़ सकी अबला तथा।
विवश होकर मोहन दास ने,
विमल पत्र लिखा उस मेम को ॥८०॥

"बहन, मैं लिखता यह पत्र हूँ,
कुपित हो न, मुझे करना क्षमा।
युवक भारत के चिर सत्य ही,
कुपथ में पद हैं रखते नहीं ॥८१॥

उभय पूज्य कथा इतिहास से,
लिख रहा उनसे उपदेश लों।
तुम बनो शुचि उत्तम नागरी,
अधम जीवन को बस छोड़ दो ॥८२॥

नृप दशानन की भगिनी गई,
विपिन में रघुवीर समीप में।
बस कहा उसने "कर ब्याह लो,
पति मिला तुम-सा जग में नहीं" ॥८३॥

तब कहा उससे अवधेश ने,
बहुत हीन विचार सुना रही।
सतत आर्य-चरित्र पवित्र है,
समझते जननी पर-दार को ॥८४॥

विदित था यह राघव को, महा,
समर रावण से अनिवार्य है।
पर निमन्त्रण विघ्न को दिया,
शुभ चरित्र बचा कर सर्वथा" ॥८५॥

"उरवशी, वर अर्जुन की कथा,
सुखद है सब को सब काल में।
लिख रहा वह पुण्य कथा तुम्हें,
पतित दुर्गुण को तुम छोड़ दो ॥८६॥

उरवसी जब अर्जुन से मिली,
तुरत मोहित हो, उसने कहा।
"तुम विवाह करो मुझसे मिले,
सुभग पुत्र बली तब तुल्य ही" ॥८७॥

तब जितेन्द्रिय ने उससे कहा,
यदि विवाह करूँ तुमसे, सुनो।
कब, कहाँ यह निश्चित पुत्र ही,
तुम जनो मम तुल्य, विवाह से ॥८८॥

तनय हो यदि तो ध्रुव है नहीं,
अतुल वीर बने सम कब ही।
इसलिए मुझको तुम मान लो,
हृदय से निज पुत्र, अभी-अभी ॥८९॥

विमल आर्य-चरित्र-विशिष्टता,
वह विलोक हुई अति लज्जिता।
स्वमन में शुभ कीर्ति सराहती,
परम मुग्ध गई निज गेह को" ॥९०॥

अब तुम्हीं समझो निज देश का,
वह महा यश खो सकता कहाँ।
स्वकुल-कीर्ति भुला कर विश्व में,
पतित जो न हुआ, वह कौन है ॥९१॥

अब कभी मुझसे मिलना नहीं,
निज विचार बुरा तुम छोड़ दो।
बस यही विभु से मम याचना,
विधि तुम्हें वर बुद्धि विवेक दे" ॥९२॥

वह अनूप अनेक चरित्र से,
चकित थे करते सबको सदा।
गुण अलौकिक मोहन में रहे,
सहज भक्त सभी जन हो गए ॥९३॥

नियम, संयम से, चिर सत्य से,
समय-पालन से, शुभ-पाठ से।
बहु विमोहित थे जन सर्वदा,
विमल मोहन के मृदु-भाव से ॥६४॥

लख उन्हें कहते सब थे यही,
यह अलौकिक है गुरु विश्व का।
शुभ सुधारक भारत का तथा,
सकल दुर्गुण-नाशक सर्वथा ॥६५॥

पठन-कार्य समाप्त हुआ जभी,
भवन की स्मृति से कँप-से गए।
बहुत शीघ्र चले निज देश को,
बन गए वर विज्ञ वकील थे ॥६६॥

[इन्द्र वज्रा]

दुःखी बनाते उन बन्धुओं को,
सम्मान से मोहन दास लौटे।
आता मिले सागर के किनारे,
फूले समाते मन में नहीं थे ॥६७॥

——

चतुर्थ सर्ग

न्यायालय

इन्द्र वज्रा

थी बंधु के मानस में सुकाँक्षा,
दीवान हों तात विदेश से आ।
दुर्भाग्य से पूर्ण हुई न आशा,
गांधी न ऊँचा पद चाहते थे ॥१॥

प्रस्ताव आया जब बन्धु से त्यों,
सद्भावना को इस भाँति रक्खा।
"दीवान होना उनको नहीं है,
दुर्दासता को अघ मानते हैं ॥२॥

जो दास हो जीवन को बिताते,
सम्मान को निश्चित बेचते हैं।
आत्माभिमानी उनमें न होते,
जीते हुए भी मृत तुल्य वे हैं ॥३॥

स्वातंत्र्य की बुद्धि विनिष्ट होती,
श्री, कान्ति, विद्या, पर-दासता में।
राजा महा मूढ़ मदान्ध होते,
शास्त्रज्ञ सत्कार न जानते हैं ।।४।।

आत्माभिमानी नर क्या धरा में,
आधीन हो जीवन हैं बिताते।
आजन्म भी सिंह बनस्थली में,
दासत्व क्या है करता किसी का ।।५।।

आता निराशा-नद में बहे ज्यों,
वैराग्य-संयुक्त विचार देखा।
निर्जीवता व्याप्त हुई त्वचा में,
टूटी महा-भाग्य अहो, चणों में ।।६।।

सारी धरा ही अपनी धुरी से,
ऐसा हुआ ज्ञात हटी पलों में।
चारों दिशा में तम छा गया था,
देता दिखाई कुछ भी नहीं था ।।७।।

नक्षत्र आते नभ से, धरा को,
देखा उन्होंने भयभीत होते।
रोती दिशाएँ सब ओर से थीं,
लू तुल्य थी वायु उन्हें जलाती ।।८।।

अत्यन्त मर्माहत बन्धु, ज्ञानी,
निष्प्राण हो व्याकुल हो रहे थे।
नेत्राम्बु से ही प्रिय बन्धु को थे,
मानो जताते निज दीनता को ।।९।।

श्री बन्धु ने ध्यान उन्हें दिलाया,
"भेजे गए क्यों इँगलैंड को थे।
दीवान का आसन ले पुनः भी,
उत्कर्ष को प्राप्त करें पिता के ॥१०॥

माता नहीं देख सकीं दृगों से,
दीवान है मोहनदास बेटा।
स्वर्गीय हा, सत्वर हो गई हैं,
ले लालसा को हृदयस्थली में ॥११॥

दीवान हो, शान्ति उन्हें दिलाओ
अत्यन्त आनन्दित हों वहाँ भी।
संतुष्ट हों पूर्वज स्वर्ग में भी,
होती तभी उन्नति वंश की है ॥१२॥

भ्रातानुयायी तुम हो, अभी से,
सत्कीर्ति हो व्याप्त वसुन्धरा में।
सौमित्र थे भ्रातृ-पदानुगामी,
होती प्रशंसा उनकी इसी से" ॥१३॥

प्रेमाम्बु बाढ़ा शुभ लोचनों में,
हृद्देश में ज्वार उठा हुआ था।
सत्प्रेम से शीश झुका कहा यों:-
"आज्ञा मुझे जो, उसको करूँगा ॥१४॥

संवेदना किन्तु मुझे सताती,
है प्रार्थना पूर्व सुनें व्यथा को।
जो अंत में ही उपदेश होगा,
वैसा करूँगा, मम है प्रतिज्ञा ॥१५॥

अंग्रेज के शासन से दुखी हैं,
संपूर्ण वासी मन में, विचारें।
लक्ष्मी यहाँ की बस देखते ही,
प्रस्थान होती परदेश को है ॥१६॥

स्वातंत्र्य-कामी निज देश-सेवी,
नित्यैव वन्दी गृह में पड़े हैं।
फाँसी किसी को मिलती कहीं है,
जाते निकाले कुछ देश से हैं ॥१७॥

श्रीराम का भारत सर्वदा से,
समृद्धि शाली जग में रहा है।
गौरांग से पीड़ित आज भारी,
दुःखाग्नि में ही जलता वही है ॥१८॥

गोपाल की थी प्रिय जो धरित्री,
घी-दूध-धारा बहती जहाँ थी।
गायें वहाँ हैं कटती सहस्रों,
श्वेतांग द्वारा नित सैनिकों को ॥१६॥

मैं चाहता था दुख को मिटाना,
स्वाधीनता का शुभ काल लाना।
देता दिखाई मुझको यही है,
दुर्भाग्य ही भारत का अभी है ॥२०॥

दीवान हैं आप मुझे बनाते,
मैं क्या करूँगा परतंत्रता में।
जो देश-सेवा करता सदा ही,
आराध्य होता जग में वही है ॥२१॥

साम्राज्य छोड़ा रघुवीर ने था,
सेवा सभी भारत देश की हो।
लंकेश विध्वस्त हुआ इसी से,
स्वाधीनता भारत की बची है" ॥२२॥

भाई, न संतुष्ट हुए गिरा से,
निस्वार्थ की बात उन्हें न भाई।
अत्यन्त चिन्ता-सर-मग्न गांधी,
संलक्ष्य से दूर नितान्त ही थे ॥२३॥

प्रज्ञा न देती कुछ काम थी, हा,
सम्पूर्ण शिक्षा उस काल भूली।
अज्ञान से आकुल हो उन्होंने,
वागीश्वरी को मन में मनाया ॥२४॥

"हे शारदे! हे वर-बुद्धि-देवी,
पद्मासने, संतत सिद्धि-दात्री।
वीणा बजाती, तम को मिटाती,
श्री हंस आसीन यहाँ पधारो ॥२५॥

विभ्रान्तता को पल में भगाओ,
जो सुप्त हैं भाव पुनः जगाओ।
कर्तव्य का पन्थ न दीखता है,
दे वेद का ज्ञान मुझे, बढ़ाओ ॥२६॥

सद्ज्ञान देती विधि को जभी हो,
वे हैं सुनाते तब वेद वाणी।
दुर्मूकता को हरती सदा ही,
वीणा बजा संसृति को सुनाती ॥२७॥

देवेश को ध्यान कभी दिलाती,
कर्तव्य में हैं रत वे दिखाते।
नागेश-शायी तब जागते हैं,
वीणा रसीली जब हो सुनाती ॥२८॥

देती सुधी, धीर सुधी नरों को,
वे सर्व मिथ्या जग से मिटाते।
दुःखादि निर्मूल तुरन्त होते,
संपूर्ण भू में सुख-राज्य होता ॥२९॥

नित्यैव पूजा रत हैं दिखाते,
वाल्मीकि-से सत्कवि नाम धारी।
तेरी कृपा का वरदान पाते,
सद्ग्रन्थ को हैं रचते चरणों में ॥३०॥

भाण्डार से शब्द समूह लेते,
स्वच्छन्द माला कवि हैं बनाते।
पूजा सदा हैं करते उसी से,
हे देवि, तेरी, जन-देवता की ॥३१॥

आलस्य संयुक्त नराधमों में,
दे वीरता, वीर उन्हें बनाती।
कर्तव्य शाली रण सैनिकों में,
उत्सर्ग का भाव सदा जगाती ॥३२॥

तू हास्य का भाव कभी जगाती,
नारी-नरों को पल में हँसाती।
शृंगारिता की सरिता बहाती,
उन्मत्त कामी जनता नहाती ॥३३॥

निस्सीम भावोदधि मानसों में,
है व्याप्त सारे वपु-धारियों के,
ज्ञानी उसी में डुबकी लगाते।
रत्नादि लाते, जन को लुटाते ॥३४॥

कर्मण्यता की जड़ भावना है,
निस्तत्व होता तज भाव, मानी।
माता-पिता-पुत्र-कलत्र का भी,
आधार ही केवल भावना है ॥३५॥

हे भाव-देवी ! अपनी कृपा से,
कर्त्तव्य भावी मुझको सुझाओ।
सारी निराशा पल में भगाओ,
संलक्ष्य से शीघ्र मुझे मिलाओ ॥३६॥

ऐसी व्यवस्था कर दो क्षणों में,
दीवान हूँ मैं न कदापि माता।"
भ्राता दुखी थे, इससे सुखी ने,
तत्काल दी सम्मति शब्द ही में ॥३७॥

भाई, भए सर्व रियासतों में,
दीवान का स्थान मिला न कोई।
संयोजना संप्रति हो गई थी,
साफल्य से वंचित ही रहे वे ॥३८॥

वागीश्वरी सर्व रियासतों में,
जा राजती थी मन में नृपों के।
गांधी सदिच्छा इस भाँति रक्खी,
जाना किसी ने न रहस्य सारा ॥३९॥

दुःखी हुये मोहन-बन्धु भारी,
पूरी न इच्छा जब हो सकी थी।
आरब्ध का चक्र विचार, जी से,
संकल्प छोड़ा अपना उन्होंने ॥४०॥

वैरिस्टरी को करने, वहाँ से,
गाँधी गए तत्क्षण बम्बई को।
देखा उन्होंने निज क्षेत्र सारा,
अत्यन्त चिन्ता मन में समाई ॥४१॥

विश्वास था जीवन धन्य होगा,
न्यायालयों में कर लोक-सेवा।
होगी वहाँ सत्य-दया-व्यवस्था,
होंगे वहाँ के नर पुण्य-शाली ॥४२॥

न्यायी, महा पंडित धर्मचारी,
सर्वत्र होंगे कचहेरियों में।
स्वर्गीय होंगी जन-कामनाएँ,
अन्याय कोई उनमें न होगा ॥४३॥

आ, ग्राम-वासी स्व विवाद सारे,
होंगे मिटाते वर ज्ञानियों से।
वैरिस्टरों के सहयोग से वे,
दुःखाम्बु को क्या तरते न होंगे ॥४४॥

सद्धर्म शाली, उनमें मनीषी,
राजर्षि के तुल्य वकील होंगे।
अन्याय का नाश विधान से ही,
वे नित्य होंगे करते विभा से ॥४५॥

देखा वहाँ रंग तुरन्त ऐसा,
प्रासाद मिथ्या छल का खड़ा है।
आतंक है घोर अदालतों में,
छाई निराशा इस मार्ग में भी ॥४६॥

ग्रामीण आते स्व वकील से हैं,
दुःखान्त-गाथा अपनी सुनाते।
कानून बाधा जब देखते, वे,
मिथ्या सिखाते तबहैं नरों को ॥४७॥

न्यायी सभी बात कभी स्वयं ही,
है जानता किन्तु प्रमाण लेता।
साक्षी न पाता उस तथ्य का, तो,
उन्मुक्त होता अपराध ऐसा ॥४८॥

साक्षी मृषा ही अति धूर्त प्राणी,
आजन्म देते कुछ मूल्य लेते।
सम्मान पाते फिर भी सदा वे,
मिथ्याभियोगी जय नित्य पाते ॥४९॥

हैं बाबुओं के सहयोग से ही,
उत्कोच लेते अधिकांश न्यायी।
है मास में वेतन पाँच सौ ही,
वे कोष में हैं रखते सहस्रों ॥५०॥

प्रासाद ऐसा धन से बनाते,
ईर्ष्या जगाते सब के उरों में।
देते उन्हें घूस वकील भी हैं,
जो न्याय के दूत सदा कहाते ॥५१॥

ग्रामीण आते अति दूर से हैं,
मिथ्या कला में पर दक्ष होते।
वे भेद को सत्य वकील से भी,
पूरा छिपाते निज उक्तियों से ॥५२॥

जो ख्यात बैरिस्टर थे वहाँ के,
वे कार्य लेते नव आगतों से।
देते उन्हें थे पर आय थोड़ी।
वे अर्थ से हीन महा दुखी थे ॥५३॥

अत्यन्त थे क्षुब्ध विलोक गांधी,
सत्क्रान्ति लाना बस चाहते थे।
संकल्प ले मानस में निराला,
आरम्भ सत्कार्य किया उन्होंने ॥५४॥

जो पास आता अभियोगियों में,
संपूर्ण वार्ता सुनते उसी से।
सच्ची सुनाता घटना, उसी का,
सोत्साह गांधी अभियोग लेते ॥५५॥

विज्ञात होता अभियोग मिथ्या,
देते नहीं थे सहयोग गांधी।
सम्मोह होता धन का नहीं था,
सद्धर्म का मोह उन्हें महा था ॥५६॥

संभ्रान्त बैरिस्टर-अंश को भी,
गांधी न देते निज आय से थे।
वाराटिका घूस निमित्त पाते,
न्यायी न थे मोहन के करों से ॥५७॥

वे बाबुओं के कर में कभी थे,
अन्याय से अर्थ नहीं दिलाते।
होता नहीं साहस था उन्हें भी,
क्या माँगते मोहन दास से वे ॥५८॥

मिथ्याभियोगी भयभीत होते,
आते न मिथ्या अभियोग को ले।
साक्षी न आते छल छिद्र वाले,
गांधी-विभा से डरते सदा थे ॥५६॥

अत्यल्प पाते अभियोग गांधी,
पूरा न होता व्यय मास का था।
अत्यन्त ही आर्थिक कष्ट भोगा,
त्यागा नहीं सत्पथ को उन्होंने ॥६०॥

साश्चर्य देखा सहवर्गियों ने,
न्यायी महा विस्मित देखते थे।
ऐसा निराला न वकील आया,
गाधी तपस्वी सम ही व्रती हैं ॥६१॥

विख्याति छाई कुछ काल ही में,
गांधी न मिथ्या अभियोग लेते।
सम्मान के पात्र बने सभी के,
न्यायी उन्हें नित्य सराहते थे ॥६२॥

गांधी किसी का अभियोग लेते,
न्यायी उसे ही सच मानते थे।
साक्षी नहीं वे कुछ देखते थे,
गांधी व्रती को विजयी बनाते ॥६३॥

विश्वास पूरा सहसा उन्होंने,
वैरिस्टरों के उर में जमाया।
ले सत्य का आश्रय सर्वथा वे,
साफल्य हैं पा सकते कहीं भी ॥६४॥

संयोग से भारत के धनी का,
नैटाल में था अभियोग भारी।
इच्छा यही थी उसकी निराली,
गांधी वहाँ जा अभियोग देखें ॥६५॥

अन्याय होता उस देश में था,
थे क्लेश में भारत के प्रवासी,
कोई नहीं था उनका सहारा,
वे दीनता में दुख झेलते थे ॥६६॥

सम्मान पाते अति निम्न कुत्ते,
प्यारे प्रवासी अपमान पाते।
कीटाणु-सा-भारत वासियों को,
हा, जानते थे मद मत्त गोरे ॥६७॥

वे मार्ग में जा सकते नहीं थे,
जाते जहाँ थे दिव-दूत गोरे।
था दूर होता उनका मुहल्ला,
गोरे जहाँ थे रहते, वहाँ से ॥६८॥

कानून से शासित हो रहे थे,
छीने गये थे अधिकार सारे।
भूखण्ड-वासी समझे न जाते,
प्रख्यात वे 'भारत के कुली' थे ॥६९॥

गांधी सुना थे करते, प्रवासी,
अन्याय को हैं सहते सदा से।
संकल्प ऐसा मन में लिया था,
तत्काल देंगे जन को सहारा ॥७०॥

श्री सेठ ने की अभियोग वार्ता,
नैटाल के भी दुख को सुनाया।
सन्नद्ध गांधी द्रुत हो गए त्यों,
सेवा दया की शुभ भावना से ॥७१॥

पर्याप्त दे अर्थ, पता वहाँ का,
श्री सेठ निश्चिन्त हुआ पलों में।
संपूर्ण संबंधित कार्यवाही,
की पूर्ण गांधी गुरु ने यहाँ की ॥७२॥

थी वन्धु की सम्मति शीघ्र गांधी,
सत्कीर्ति, संपत्ति वहाँ कमाएँ।
बाधा इसी से कुछ भी नहीं थी,
जो रोक लेती वर धारणा से ॥७३॥

विज्ञात जैसे सुत को हुआ त्यों,
बैठा पिता के शुभ अंक में जा।
तत्काल रोते इस भाँति बोला,
"क्यों आप जाते तज पुत्र को हैं ॥७४॥

हैं आप जाते फिर कौन मेरा,
ऐसा सहारा इस धाम में है।
प्रातः चलेगा सँग कौन मेरे,
मैं घूमने को चलता जभी हूँ ॥७५॥

जो था रिझाता मुझको हँसाता,
जाता वही है अब छोड़ माया।
जाने अकेले न कदापि दूँगा,
मैं पूज्य बापू सँग में चलूँगा" ॥७६॥

[द्रुत विलंबित]

हृदय से सुत को अपने लगा,
परम विह्वल मोहन ने कहा।—
"तुम अभी सुकुमार अबोध हो,
फिर कभी न कभी चलना वहाँ ॥७७॥

सुखद जो प्रिय वस्तु लगे तुम्हें,
तुम कहो उनको झट भेज दूँ।
मुदित होकर बालक-यूथ में,
विहँसना उनसे नित खेलना ॥७८॥

पंचम सर्ग

अफ्रीका बास

भुजंग प्रयात

हुई पूर्ण यात्रा जभी सागरों की,
गए रेल में बैठने शीघ्र गांधी।
तभी यान में एक उद्दण्ड गोरा,
गया बैठने दैव संयोग से था ॥१॥

वहाँ देख सानन्द बैठा प्रवासी,
हुआ श्वेत उन्मत्त, बोला "चला जा।
मिला स्वत्व क्या बैठने का कुली को,
जहाँ राजते हैं महा योग्य गोरे" ॥२॥

भला लेश चिन्ता हुई क्या, उन्होंने,
नहीं स्थान छोड़ा न आतंक माना।
कहा,-"है मुझे भी वही स्वत्व जैसा,
मिला आप को है यहाँ बैठने का ॥३॥

इसे जान लो मैं नहीं जा सकूँगा,
महा शैल के तुल्य बैठा रहूँगा।
नहीं शक्ति कोई मुझे जो हटा दे,
नहीं भागते केसरी ल्योरियों से ।।४।।

न सम्मान खोना कभी हिन्द का है,
मुझे है महा मान व्यक्तित्व का भी।
नहीं बैठना इष्ट है, आप को तो,
चले जाइए, दूसरे यान में हो" ।।५।।

महाश्चर्य में मग्न था क्रूर गोरा,
लगा सोचने "काल ही क्या खड़ा है।
कहीं सुप्त नागारि को क्या जगाया,
कहीं शेष नागेश ही सामने क्या ।।६।।

कहीं शत्रु गौरांग का आ गया है,
सभी गर्व को जो मिटा ही रहेगा।
यही व्यक्ति के तेज से व्यक्त होता,
हमें स्वत्व से हाथ धोना पड़ेगा" ।।७।।

पुनः जाति के गर्व ने शक्ति फूँकी,
हुआ लाल पीला महा श्वेत दोषी।
जिसे देखते दृश्य ऐसा बना था,
कई रंग का एक खम्भा खड़ा हो ।।८।।

महावेश में था न गोरा दिखाता,
खड़ा देह धारे महा क्रोध मानो।
बुला गार्ड को श्वेत ने घोषणा की,
'हटाओ कुली को अभी शीघ्रता से' ।।९।।

सभी वस्तुओं को उसी ने गिराया,
किया यान को रिक्त गांधी व्रती से।
धुलाया गया वारि से पूर्ण डिब्बा,
हुआ भ्रष्ट था आर्य के बैठने से ॥१०॥

कहा श्वेत ने "क्या महा गर्व ही है,
तुझे कर्म का भोग मैं दे चुका हूँ"।
गयी छूट गाड़ी न गांधी गए थे,
रहे क्षुब्ध बैठे निशा में अकेले ॥११॥

अहो, शीत की रात्रि में ठंढ खाते,
रहे धीरता से बिना वस्त्र ओढ़े।
जगी भावना लोक सम्मान की थी,
निशा में स्वयं कष्ट को हेय माना ॥१२॥

"महा पाप है आत्म सम्मान खोना,
वृथा जी रहे मान जो खो चुके हैं।
न दुष्कर्म ऐसे मुझे सह्य होंगे,
रहूँगा नहीं मौन अन्याय होते ॥१३॥

हँसी राम की क्रूर लंकेश ने की,
उन्होंने मिटाया उसे मूल से ही।
अहिंसा तथा सत्य के अस्त्र से मैं,
अनाचार का अंत सारा करूँगा" ॥१४॥

इसी भाँति थे सोचते धीर गांधी,
अकेले वहाँ योग धारे निशा में।
तथा ग्लानि से क्रोध से क्षुब्ध होते,
न जाने तभी और थे सोचते क्या ॥१५॥

इसी भाँति थे सोचते धीर गांधी,
अकेले वहाँ योग धारे निशा में।
तथा ग्लानि से क्रोध में क्षुब्ध होते,
न जाने तभी और थे सोचते क्या ॥१६॥

वहाँ धीर को देख बैठा निराला,
किसी ने कहा, "योग का रूप देखो।
महाकष्टदा वायु भी हार खाती,
उसे है डिगाती न तल्लीनता से" ॥१७॥

कहा एक ने, "धर्म का रूप जानो,
मिटाता रहेगा बुरी भावना को।
सुकर्त्तव्य नाना सभी प्राणियों को,
बताता रहेगा मनोयोग से ही" ॥१८॥

किसी ने कहा, "योग का रूप जानो,
यहाँ आ गया है प्रवासी बचाने।
महा दैन्य में कष्ट में व्यक्ति सारे,
उन्हें सौख्य देगा स्वयं कष्ट पाते" ॥१६॥

महा तेज का रूप जाना किसी ने,
महा शांति का मंत्र दाता निराला।
न बन्दूक से तोप से भी हटेगा,
अहा, शैल सी प्रौढ़ता दीखती है ॥२०॥

किसी ने कहा, 'क्रोध बैठा यहाँ है,
नहीं शांत होगा सभी क्षार होंगे।
मिटा दुष्ट की दुष्टता को क्षणों में,
पुनः सज्जनों को महा सौख्य देगा ॥२१॥

निशा की गई कालिमा घोर छाई,
दिवानाथ ने तेज के बाण छोड़े।
सभी वस्तुएँ श्यामता में रँगी थीं,
पुनः दिव्य आभामयी हो गईं वे ॥२२॥

रहे बन्द पक्षी सभी घोसलों में,
उड़े पंख को खोल आठों दिशा में।
लगे गान गाने धरा को गुँजाने,
तथा खिन्न गांधी व्रती को रिझाने ॥२३॥

पुनः कार्य में लीन सारे दिखाये,
पड़े सो रहे रात्रि के अंक में जो।
वहाँ एक योगी नया देखते ही,
सभी ओर से यूथ आने लगा था ॥२४॥

कहा एक ने वृन्द में से तपी से,
"अभी मालगाड़ी चलेगी यहाँ से।
महाराज! जायें उसी में अकेले,
यहाँ व्यर्थ क्यों दुःख को झेलते हैं ॥२५॥

बड़ी वेदना हो रही है सभी को,
महा क्लेश को देखते सत्यकामी।
नहीं है दया क्रूर अन्यायियों में,
सदा रौंदते हिन्द के वासियों को ॥२६॥

चले आप जायें नहीं आप के ही,
यहाँ संग में दूसरे देश-वासी।
मरेंगे महाश्वेत की क्रूरता से,
बचा श्री सकेंगे नहीं पीड़ितों को" ॥२७॥

व्रती ने कहा—" ऐ सुनो भारतीयो,
बचाने तुम्हें मैं यहाँ आ गया हूँ।
न चिंता तुम्हें लेश भी श्वेत से है,
मिटा पूर्ण अन्याय को, शांति लूँगा ॥२८॥

नहीं 'माल' से मैं कभी जा सकूँगा,
यहाँ से यथा पूर्व, मित्रो ! चलूँगा।
नहीं पैर हैं धीर पीछे हटाते,
महा काल भी सामने आ खड़ा हो" ॥२९॥

पुनः रेल आई चढ़े यान में जा,
नहीं बैठ पाते जहाँ थे प्रवासी।
सभी जानते थे नहीं सिद्धि होगी,
हुई अंत में जीत सत्याग्रही की ॥३०॥

अभी तीर्थ को आ गये त्यों उन्होंने,
सुनाया सभी काण्ड जो हो चुका था।
अचम्भा नहीं एक भी व्यक्ति को था,
किसी ने नई बात जानी नहीं थी ॥३१॥

वहाँ सेठ का कार्य पूरा सँभाला,
उसी के लिए देश से वे गए थे।
तथा हिन्द के वासियों की दशा को,
लगे देखने ध्यान से धीर गांधी ॥३२॥

'कुली' नाम से ख्यात होते प्रवासी,
महा कष्ट थे झेलते शासकों से।
सभा की उन्होंने कुली प्राणियों की,
बड़े प्यार से बात तीखी सुनाई ॥३३॥

"तुम्हें देख गोरे यही सोचते हैं,
इसी भाँति होंगे सभी हिन्द वासी।
डुबा क्यों रहे हो प्रतिष्ठा वहाँ की,
तजो मूर्खता, हीनता, दीनता को"॥३४॥

कुली की दशा थी महा दुःखदाई,
न शिक्षा, न दीक्षा, नहीं स्वच्छता थी।
इसी से सभी दृष्टि से वे गिरे थे,
उन्हें ही उठाना वहाँ था व्रती को ॥३५॥

लगे वे पढ़ाने स्वयं व्यक्तियों को,
जगाने लगे व्यग्र हो प्रान्त सारा।
कहीं अज्ञ अत्यन्त थे हीन, वासी,
जिन्हें स्वच्छता का नहीं ध्यान भी था॥३६॥

उसी भाग में जा मनस्वी व्रती ने,
कहा—एक धोबी यहाँ आ गया है।
सभी वस्त्र मैले मुझे ला, अभी दो,
जिन्हें स्वच्छता से धुला मैं तुम्हें दूँ॥३७॥

सभी ने दिए वस्त्र, सानन्द गांधी,
जिन्हें ले गए प्यार से, चाव से भी।
स्वयं धो दिए वस्तु को दिव्यता से,
धुले वस्त्र पा मुग्ध थे हीन वासी॥३८॥

इसी भाँति मैले सदा वस्त्र लाते,
तथा धो तिन्हें प्रेम से शीघ्र देते।
कई मास के बाद जाना उन्होंने,
स्वतः धो रहे थे महा धीर गांधी॥३९॥

हुई प्राप्त लज्जा, सभी व्यक्तियों ने,
झुका मस्तकों को क्षमा याचना की।
उन्होंने पढ़ा पाठ था स्वच्छता का,
बने भक्त थे नम्रता, शिष्टता के ॥४०॥

जभी कोर्ट में सेठ का कार्य आया,
लगे संधि की सोचने धीर गांधी।
"नहीं हानि हो सेठ का, साथ में ही,
विरोधी नहीं लाभ से हाथ धोवे ॥४१॥

हुआ ध्येय पूरा, गये मान दोनों,
मिटा वैर को वे बने कीर्तिशाली।
इस भाँति गांधी वहाँ दो दलों को,
मिलाते रहे संधि के सूत्र से ही ॥४२॥

हुआ सेठ का लक्ष्य पूरा, वहाँ से,
हुए क्षिप्र तैयार वे लौटने को।
विदा का दिया सेठ ने भोज भारी,
बुलाया सखा-वृन्द, सम्मानितों को ॥४३॥

जभी भोज था हो रहा सौम्यता से,
समाचार ऐसा छपा पत्र में था।
"प्रवासी यहाँ जो बसे देश में हैं,
न निर्वाचनों में उन्हें स्वत्व होगा" ॥४४॥

सभा में बड़ी व्यग्रता दी दिखाई,
किसी ने कहा—"दुष्टता राज्य की है।
मिटाना यहाँ से हमें चाहते हैं,
इसी से बना वे रहे दुष्ट धारा" ॥४५॥

महा खिन्न वे धीर गाँधी दिखाते,
रहे किन्तु वे शांत जानाः उन्हें था ।
सभी ने कहा "सोचते आप क्या हैं,
विदाई नहीं आज होगी यहाँ से ॥४६॥

दिखाएँ हमें मार्ग सद्बुद्धि द्वारा,
सहारा नहीं दूसरा है दिखाता ।
रुकेंगे पुनः आपदा दूर होगी,
हमें स्वत्व गोरे नरों से मिलेगा" ॥४७॥

कहा सेठ ने–"आप आए यहाँ हैं,
रहें एक दो मास, भारी दया हो ।
इसी में नई सिद्धियाँ प्राप्त होंगी,
सभी आप की कीर्ति गाते रहेंगे ॥४८॥

करें कार्य आरम्भ न्यायालयों में,
प्रवासी सभी नित्य साहाय्य देंगे ।
नहीं कार्य देंगे किसी दूसरे को,
महा आय सत्बन्धुओं से बढ़ेगी ॥४६॥

अभी भेंट में द्रव्य जो दे चुका हूँ,
उसी से करें पूर्ण उद्योग, मानी ।
हमें जीत अन्यायियों से मिलेगी,
नहीं धर्म की हार होती कभी है" ॥५०॥

सभी ने पुनः प्रेम से प्रार्थना की,
महोदेश था एक ही प्राणियों का ।
दया-मूर्ति गाँधी भला टालते क्या,
रुके वे पुनः याचना से सभी की ॥५१॥

बनाई गई योजना तीव्रता से,
न हो पास प्रस्ताव धारा-सभा में।
उन्हें स्वत्व हो प्राप्त निर्वाचनों में,
यथा है मिला देश के वासियों को।।५२।।

अतः तार भेजा गया शासकों को,
"नहीं नीति आतंकवादी बनायें।
हमारा लिया जा रहा स्वत्व सारा,
विरोधी सभी घोर अन्याय के हैं"।।५३।।

सभा में नये भाषणों को सुनाते,
निशा में, दिवा में, न विश्राम लेते।
अहंभाव गांधी सभी में जगाते,
अनाचारियों की बुराई बताते ।।५४।।

खड़े हो गए कान नारी-नरों के,
सुना लोक नेता बता क्या रहा है।
बने शीघ्र वे भक्त गांधी व्रती के,
चले वे उसी मार्ग में त्याग शंका ।।५५।।

मनस्वी सुधी ने महा क्रान्ति छेड़ी,
गिरे प्राणियों में महा शक्ति फूँकी।
हुआ ज्ञान ऐसा सभी वासियों को,
बने कार्य-कर्ता उन्हीं में निराले ।।५६।।

उन्हें साथ में ले बढ़े वीर गांधी,
प्रतिष्ठाभिमानी बनाया सभी को।
लगाई महा अग्नि जो क्रान्ति की थी,
प्रभा आज भी व्याप्त आठों दिशा में ।।५७।।

बनाई नई शुभ्र संस्था उन्होंने,
पड़ा नाम "नैटाल कांग्रेस" जानो।
उसे ही बनाया महा शक्ति-शाली,
प्रवासी हुए पूर्ण सम्पन्न सारे ॥५८॥

सभी कार्यवाही सभा की सदा वे,
छपाते रहे नित्य ही पत्रिका में।
उन्हें भेजते दूर के देश में भी,
मिले युक्त सद्भावना दूसरों से ॥५६॥

अतः विश्व ने शीघ्र संदेश भेजा,
'कुली माँग हो पूर्ण "धारा सभा" से'।
मिला स्वत्व निर्वाचनों का कुली को,
नहीं हो सका पास प्रस्ताव जानो ॥६०॥

"गए हिन्द से जो कुली थे वहाँ को,
बुरी शर्त ऐसी लगी साथ में थी।
वहाँ दास वे पाँच वर्षों रहेंगे,
बने एक का ही गुलामी प्रथा से ॥६१॥

महा दुःख में काल वे थे बिताते,
उन्हें क्रूर गोरे सदा थे सताते।
कहीं एक भी त्यागता दासता को,
उसे भेजते जेल बंदी बनाते ॥६२॥

इसी हेतु गोरे सदा चित्त चाहा,
कराते सभी कार्य को दण्ड देते।
महा यातना झेलते को कुली वे,
बने मूक, हा! श्वान से भी गिरे थे" ॥६३॥

घने जंगलों को मिटाया उन्होंने,
बनाये नये स्वच्छ मैदान बाँके।
सभी प्रान्त में आम्र उद्यान भारी,
लगा फूल, बेलें धरा को सजाया ॥६४॥

बना खेत, गन्ने लगाये उन्होंने,
बहाई नदी दूध घी को निराली।
बनाये नये मार्ग बाजार सारे,
हरी दूब, पुष्पादि की वाटिकाएँ ॥६५॥

बिता पाँच वर्षों पराधीनता में,
तभी मुक्त होते महा आपदा से।
पुनः सर्व स्वाधीन होते कुली थे,
बिताते ससम्मान भावी दिनों को ॥६६॥

स्वतः बुद्धि से, युक्ति से, शक्ति से वे,
बढ़ाने प्रतिष्ठा लगे देश में थे।
बने दक्ष वाणिज्य में शीघ्रता से,
हुए क्षेत्र उद्यान के पूर्ण धाता ॥६७॥

हुए त्रस्त गोरे कुली-सम्पदा से,
बढ़े जा रहे हैं यहाँ दीनता से।
इसी ढंग से योग्यता जो बढ़ेगी,
बनेंगे कुली शीघ्र स्वामी यहाँ के ॥६८॥

उन्होंने रखा प्रश्न धारा सभा में,
"कुली जो यहाँ हिन्द से आगए हैं।
कभी भी नहीं मुक्त हों आपदा से,
बने वे कुली ही रहें सर्वदा को" ॥६९॥

हुआ पास प्रस्ताव धारा सभा में,
"कुली वे हमेशा कुली ही रहेंगे ।
नहीं तो उन्हें लौटना हिन्द होगा ।
न, स्वाधीन हो कार्य कोई करेंगे ।।७०।।

कुली ले पुनः पाँचवें वर्ष पीछे,
नया पत्र दो वर्ष का पूर्व-सा ही ।
गुलामी करे एक की सर्वदा ही,
नहीं दूसरे का कभी दास होगा ।।७१।।

नहीं चाहते जो पुनः दासता को,
छठें वर्ष में मुक्त वे हो सकेंगे ।
उन्हें पौंड पचीस देना पड़ेगा,
सदा वर्ष के अन्त में टैक्स द्वारा" ।।७२।।

महा घोर अन्याय को देखते क्या
कभी शांत होते वहाँ वीर गांधी ।
उठाया तभी प्रश्न स्वाधीनता का,
हुआ पास प्रस्ताव 'कांग्रेस' से भी ।।७३।।

"नहीं सह्य होगा बना ऐक्ट जो है,
न देंगे कभी टैक्स को ये प्रवासी ।
लड़ेंगे सभी धीरता, वीरता से,
मिटा ही रहेंगे बँधे टैक्स को भी" ।।७४।।

जगाने उठे देश को वीर गांधी,
कुली-ग्राम में वे गए तीव्रता से ।
नहीं एक भी गेह छोड़ा, जहाँ को,
गये हों नहीं शुभ्र संदेश देने ।।७५।।

बताया महोद्देश्य स्वाधीनता का,
तथा ऐक्ट की नीचता को बताया,
बड़ाई अहो, आत्म निष्ठा सभी में,
जगाई वहाँ अग्नि ठंढे उरों में ॥७६॥

सभी बालकों में जवानी जगाई,
बढ़े फेंक वे पुस्तकों को वहाँ थे।
बढ़ी भीष्म-सी शक्ति बूढ़े नरों में,
चले लाठियाँ ले महा उग्र होते ॥७७॥

युवा पार्थ-से कर्ण-से थे दिखाते,
सभी वे तभी काल-से हो गए थे।
उन्हें देखते वैरियों के उरों में,
निराशामयी भावना जागती थी ॥७८॥

महा कालिका और दुर्गा समाना,
चलीं देवियाँ शत्रुओं को मिटाने।
यही ज्ञात होता न कल्याण होगा,
नहीं श्वेत, क्रोधानलों से बचेंगे ॥७९॥

सभी ओर से घोर था शब्द होता
"मिटा दो अभी क्षिप्र अन्यायियों को।
चले हैं हमें जो यहाँ से हटाने
उन्हें ही महा शक्ति से रौंद डालो ॥८०॥

नहीं जानते थे अनायास में ही,
जगेगी वहाँ भावना वीरता की।
महावेश को देख गांधी व्रती ने,
कहा-"देश भक्तो, सुनो नीति मेरी ॥८१॥

मुझे पूर्ण आशा सभी प्राणियों से
यहाँ हिन्द सम्मान रक्खा करोगे।
नहीं योग्य आवेश में किन्तु आना,
भलाई न होगी कभी उग्रता से ॥८२॥

मशीनों तथा तोप संगीन आगे,
विचारो, कभी जीत होगी भला क्या।
बिना शस्त्र के नष्ट होंगे क्षणों में,
पतंगें सदा अग्नि में भस्म होते ॥८३॥

अहिंसा, दया, धीरता, शान्ति द्वारा;
स्वसन्मार्ग में जो अड़े ही रहोगे।
कभी शक्ति तोपों, गनों में नहीं है,
हरा जो सके पूर्ण विश्वास जानो॥८४॥

सभाएँ करो नित्य चेतावनी दो,
नहीं त्रास खा पैर पीछे रखेंगे।
स्व बन्दी बनाओ हमें जेल भेजो,
नहीं टैक्स देंगे, न देंगे, न देंगे ॥८५॥

(द्रुत विलम्बित)

नित सभा कर साहस को दिखा,
विविध भाँति जता अरि को दिया।
दब नहीं सकते जन हिन्द के,
जग गए अब सिंह समान हैं ॥८६॥

उस कुलीपन की जड़ है हिली,
पुरुष-गौरव का अभिमान है।
भुवन में अब मान-विहीन वे,
रह नहीं सकते पशु-जन्तु-से ॥८७॥

उस धरा पर भाग समान है,
निज कुली जन का सब काल में।
सकल श्वेत महा सुख भोगते,
प्रभु बने रहते जिस भाँति हैं ॥८८॥

पुरुष खोकर गौरव-गर्व को,
यदि बना रहता नित दास है।
अहह, मानव का अभिशाप है,
तुरत ही मरना उसका भला ॥८९॥

कुपित शासक, भारत-बन्धु को,
पकड़ बंद लगे करने वहाँ।
दस सहस्र गए जन जेल में,
विहँसते, अरि से भय हीन हो ॥९०॥

कुटिल शासक ने अभियोग से,
गृह विहीन किया जन को वहाँ।
बहुत से अपराध लगा नए,
विपुल वैभव को द्रुत ले लिया ॥९१॥

अधिक साहस ही बढ़ता गया,
समझने सब श्वेत लगे तभी।
सहज शान्त न हो सकते कुली,
मद चढ़ा उनमें अधिकार का ॥९२॥

बहुत को खलु दैहिक कष्ट दे,
सरस मानव को दहला दिया।
अति भयंकरता दिखला वहाँ,
भवन को, जन-गांव जला दिया ॥९३॥

पर हुए भयभीत न लेश भी,
सहज शक्ति दिखा कर वे बढ़े।
बढ़ हटे न कभी गन से, अरे,
समर में बढ़ते, मरते गये ॥६४॥

अतुल जागृति थी उस देश में,
मिट सकी न कभी क्षण मात्र भी।
स्वजन के सँग मोहन दास जी,
दुसह दुःख वहाँ सहने लगे ॥६५॥

अधिक वासर बीत गए, उन्हें,
मधुर-पत्र मिला निज दार का।
व्यथित हो मन से पढ़ने लगे,
विरह-अम्बुधि था लहरा रहा ॥६६॥

"प्रभु गए मुझसे कहते हुए,
रह नहीं सकता परदेश में।
शरद तीन समाप्त हुए वहाँ,
रम गए सब भाँति भुला मुझे ॥६७॥

यह पता मुझको कुछ है नहीं,
अब वहाँ रहते किस रूप में।
पर दया कर सुन्दर पत्रिका,
हृदय से पढ़ना, मम याचना ॥६८॥

बिछु गए जब से, गृह से यहाँ,
बहुत है परिवर्तन हो गया।
प्रकृति भी अति भिन्न हुई, नहीं,
नियमता उसमें दिखला रही ॥६९॥

बहुत था मिलता निशिनाथ को,
गगन में लखते सुख सर्वदा।
पर वही अब पीड़ित है मुझे,
सहज में करता रहता, अरे ॥१००॥

नित सुधा बरसा करता यहाँ,
वर सुधाकर से मम गेह में।
पर वही विष है बरसा रहा,
सहज भाव भुला कर सर्वथा ॥१०१॥

गगन में शुभ तारक वृन्द जो,
सुखद थे नित ही निज नेत्र को।
अनल से जलते लगते वही,
परम पीड़ित हैं करते मुझे ॥१०२॥

अनिल सावन का तन में कभी,
सरस था लगता शुचि संग में।
प्रखर वायु समान निदाघ की,
भुलसता मुझको अब है वही ॥१०३॥

शिशिर की निशि थी कब बीतती,
यह पता चलता न विनोद में।
अब नहीं कटती वह रात्रि है,
बन गई वह मास समान ही ॥१०४॥

कुसुम-हार मनोहर नित्य थे,
मृदुल भी लगते जब आप थे।
पहनते गड़ते अब अंग में,
समझ कंटक हूँ द्रुत फेंकती ॥१०५॥

मदन-पाठक मंजु रसाल में,
मधुर कू करता जब है कहीं।
हृदय में चुभता वह शब्द है,
व्यथित है करता खर तीर-सा ॥१०६॥

'पिउ कहा' जब चातक बोलता,
श्रवण में है विष घोलता,
विरह-वह्नि बढ़ा कर देह में,
परम कातर है करता कभी ॥१०७॥

प्रणय में पटु कानन के शिखी,
विविध नृत्य अलौकिक साजते।
पति विहीन मुझे जब देखते,
समुद दंपति हैं करते हँसी ॥१०८॥

सरस भाषण से अलि मंडली,
अधिक हर्ष दिया करती कभी।
कटु हँसी करती, मिलती वही,
प्रिय नहीं लगता व्यवहार है ॥१०९॥

मधुर चित्र सुशोभित कक्ष में,
प्रिय लगे न कभी मम चक्षु को।
कर दिया उनको प्रतिकूल, हा,
सहज में न कभी दुख दे सकें ॥११०॥

सुभग भूषण से रमणीयता,
सतत थी बढ़ती निज अंग की,
अब वही भगते निज भाग से,
न तन में रहना मम चाहते ॥१११॥

विरह-वह्नि बढ़ी इस हेतु या,
रजत हेम बने गहने सभी।
वदन-आतप पाकर भागते,
न रुकते अपने शुभ अंग में ॥११२॥

जब कभी जलती विरहाग्नि से,
विविध भूषण शीघ्र उतारती।
समझती इसको सखियाँ नहीं,
अपितु हैं कहती पगली मुझे ॥११३॥

प्रभु, मुझे प्रिय है वर-मुद्रिका,
पहनती उसको स्व कराग्र में।
पर जमी गिरती, फिर ले उसे,
वलय-आश्रम में तब धारती ॥११४॥

वसन उष्ण नहीं अब धारती,
शिशिर की निशि में अति शांत में।
विरह-अग्नि जला करती अतः,
बदन से रखती नित दूर हूँ ॥११५॥

नयन से गिरता जल धार ही,
जलन को करता नित शांत है।
इस लिए मम जीव शरीर में,
बच सके, निकले न तुरंत हैं ॥११६॥

अब दया कर सूचित कीजिए,
भवन को अपने कब आ रहे।
यदि न सत्वर सम्मुख आ गए,
फिर न जीवित पा सकते मुझे" ॥११७॥

त्वरित उत्तर मोहन ने लिखा,
परम शांति मिली तब दार को।
वह पुनः पति दर्शन के लिए,
दिवस को सुख से गिनने लगी ॥११८॥

जब न शान्ति हुई उस देश में,
तब लगे सब श्वेत विचारने।
पतित हो कर संप्रति पूर्व-सा,
रह नहीं सकते बश में कुली ॥११६॥

नियम पास किया त्रय पौण्ड को,
सतत दें 'कर' में जन हिन्द के।
परम मुक्त रहें फिर देश में,
नर सभी रहते जिस भाँति हैं ॥१२०॥

विजय पा कर मोहन ने वहाँ,
शमन शीघ्र किया तब क्रांति को।
फिर सभा कर चिन्तित हो कहा,
"कर लगा अब भी अपमान का ॥१२१॥

मत अधीर बनो इस टैक्स से,
परम शांति रखो मन में अभी।
विनय से 'कर' के प्रति युद्ध हो,
सफलता सब को मिल जायगी" ॥१२२॥

मुदित होकर मानव हिन्द के,
विजय गान लगे करने वहाँ।
सहज मोहन के शुभ भक्त हो,
अभय होकर वे रहने लगे ॥१२३॥

दृढ़ विचार किया मन में यही,
स्व परिवार समेत वहाँ रहें।
इस लिए जन को समझा बुझा,
फिर चले वह भारत बर्ष को॥१२४॥

षष्ट सर्ग

अफ्रीका वास (२)

[गंगोदक]

शीघ्र गांधी व्रती ने यहाँ गेह में,
बंधु से, पुत्र से, दार से भेंट की।
अन्य सन्मित्र से भी मिले प्रेम से,
प्रान्त में पूर्ण उत्साह छाया नया ॥१॥

शीघ्रता से उन्होंने 'हरी पुस्तिका',
दी सभी व्यक्तियों को लिखी थी स्वयं।
बाहरी देश में क्या हमारी दशा,
ज्ञात सारा हुआ पुस्तिका देखते ॥२॥

मुख्य पत्रों तथा पत्रिका में लिखा,
सर्व वृत्तान्त अन्याय नैटाल का।
देश में घोर निन्दा हुई श्वेत की,
आत्म बन्धुत्व का भाव जागा यहाँ ॥३॥

बम्बई को गए वीर गांधी तभी,
की सभा शिक्षितों की उन्होंने वहाँ ।
घोर अन्याय से युक्त सन्देश से,
ऐक्य का भाव जागा सभी में महा ॥४॥

पूज्य पूना गये गोखले आदि से,
चित्त की वेदना को उन्होंने कहा ।
वेग से प्रान्त मद्रास को वे बढ़े,
लोक में पूर्ण उन्मत्तता छा गई ॥५॥

हा ! यहाँ के कुली भोगते दुःख थे,
प्रान्त नैटाल में मूक हो सर्वथा ।
पूर्व से कीर्ति थी छा रही तात की,
बाल से वृद्ध ने मान भारी दिया ॥६॥

पूज्य गांधी नहीं जानते थे कभी,
मित्र के कार्य से विज्ञ होंगे सभी ।
प्यार से तृप्त हो दिव्य उत्साह से,
शुभ्र बंगाल को वे गये मोद से ॥७॥

क्रान्ति में व्यस्त थे तार ज्यों ही मिला,
शीघ्र प्रस्थान नैटाल को कीजिए ।
पूर्व-सा, सेठ जी के महा पोत से,
दार, दो पुत्र, ले भांजे को चले ॥८॥

संगम में यान दो शीघ्रता से बढ़े,
आठ सौ हिन्द वासी लिए वक्ष में ।
आ गए मुग्ध नैटाल सान्निध्य में,
किन्तु तत्काल बन्दी सभी हो गए ॥९॥

"लौट जाओ, नहीं देश है चाहता,
क्रान्तिकारी महा हो हमें ज्ञात है।
चाहते देश से व्यक्तियों को बुला,
भूमि-वासी बना स्वत्व शाली बनें ॥१०॥

नीति न्यारी तुम्हारी नहीं गुप्त है,
लौट जाओ भलाई इसी में सुनो।
अन्यथा पोत के साथ बारीश में,
मग्न होगे, नहीं देर है लेश भी ॥११॥

देश में क्रान्ति गांधी जगा जो गया,
है वही आ रहा, दैव क्या चाहता।
जो पुनः आ गया भूमि में भूल से,
सर्व नैटाल ही हाथ से जायगा ॥१२॥

शत्रुओ, देह का मोह है जो तुम्हें,
भेज दो हिन्द को उग्र गांधी अभी।
शेष नैटाल में देश वासी बनो,
त्रास जम्बूक के यूथ से है नहीं ॥१३॥

दुष्टता पूर्ण चेतावनी से भला,
हार क्या मानते वीर गांधी कभी।
अन्य भी व्यक्ति विक्षुब्ध-से हो गए,
क्षोभ की अग्नि में दग्ध होने लगे ॥१४॥

की प्रतिज्ञा वहाँ व्यक्तियों ने सभी,
मान-सम्मान का ध्यान है सर्वथा।
वास नैटाल में वे करेंगे, स्वयं,
या मरेंगे वहीं संग में मोद से ॥१५॥

वे न संलच्य से लेश पीछे हटे,
तीन सप्ताह बीते वहाँ पोत में।
ज्ञात नैटालियों को हुआ अन्त में,
हिन्द वासी डरेंगे नहीं मृत्यु से ॥१६॥

अन्त में शत्रु से शीघ्र आज्ञा मिली,
यूथ के संग गांधी रहें देश में।
गर्व से फूलते अन्य प्राणी वहाँ,
पूज्य गांधी व्रती से विदा ले चले ॥१७॥

बाल के संग कस्तूरबा भी गई,
सेठ के गेह को मान सत्कार से।
और निर्भीक हो वीर गांधी चले,
मध्य से शत्रुओं के यथा केसरी ॥१८॥

टूट ही वे पड़े देख गांधी वहाँ,
पीटने, मारने, कंकड़ों से लगे।
बीच में वे फँसे थे इसी भाँति ही,
मध्य में नीरदों के यथा भानु हो ॥१९॥

ज्ञात होता यही था बचेंगे नहीं,
भाग्य-तारा तभी अस्त होगा अरे।
और ही भाल में था लिखा देश के,
बाल बाँका हुआ ही नहीं पूज्य का ॥२०॥

दार कप्तान की जा रही थी वहाँ,
आ बचाया उसी ने स्वयं छत्र से।
आ सिपाही गए शीघ्र सम्वाद पा,
कोतवाली उन्हें ले गए संग में ॥२१॥

देख कप्तान ने हर्ष उद्रेक से,
पूर्ण सम्मान दे प्रेम से यों कहा।
"देशवासी सभी क्रुद्ध हैं आप से,
प्राण रक्षा न अन्यत्र होगी यहाँ ॥२२॥

शान्त होते न वे हैं महावेश में,
कोतवाली नहीं आप छोड़ें अभी।
बाद में जाइएगा यहाँ से स्वयं,
व्याप्त होगी व्यवस्था जभी शान्ति की" ॥२३॥

"न्याय संयुक्त हैं आप की उक्तियाँ,
भीत होता नहीं उग्र उत्पात से।
बुद्धि होगी उन्हें धर्म की आप ही,
कष्ट देंगे नहीं लेश भी वे मुझे" ॥२४॥

ले विदा शीघ्र कप्तान से वे चले,
गेह को, बाल बच्चे जहाँ थे रुके।
किन्तु निश्चिन्त कप्तान भी था नहीं,
पूज्य-रक्षार्थ आगे बढ़ा शान्ति से ॥२५॥

सोचते जा रहे थे तभी पंथ में,
हाय, क्या बीतता बालकों को वहाँ।
देख आनन्द में प्राणियों को सभी,
व्यग्र गांधी मिले प्रेम में मग्न हो ॥२६॥

चोट को देह में देख कस्तूर बा,
मूर्च्छिता हो, वहीं शून्य संज्ञा हुईं।
चेतना में हुईं, घाव धोने लगीं,
बाँधने, सेंकने, क्लेश खोने लगीं ॥२७॥

पुत्र साहाय्य देता रहा, तात से,
पूछता पूर्ण वृत्तान्त था जा रहा ।
"पूज्य क्या हो गया मार्ग में आपको,
घात कैसे हुआ आप के अंग में ।।२८।।

मैं चलूँ दुष्ट की दुष्टता देख लूँ,
शीघ्र ही शत्रु को स्वर्ग में भेज दूँ ।
भाग वे जा सकेंगे नहीं वेग से,
देखना शक्ति है आ गई देह में" ।।२६।।

भानजे ने कहा धीरता से तभी,
"क्या किया आप ने क्रुद्ध वे जो हुए ।
क्या दया है नहीं व्यक्तियों में यहाँ,
कष्ट देते सभी को अनायास ही ।।३०।।

शोक-तल्लीन थे, घोष होने लगा,
गेह को शत्रु का यूथ घेरे खड़ा ।
"बाँध लो, दुष्ट गाँधी हठी को यहाँ,
भाग क्या जा सकेगा कहीं हाथ से ।।३१।।

लौट नैटाल से है गया हिन्द में,
घोर निन्दा महा की हमारी वहाँ ।
क्रोध सारा अरे शान्त होगा स्वतः,
देखते शत्रु का अन्त होगा अभी" ।।३२।।

गर्जना से दिशाएँ रहीं गूँजती,
शक्ति सम्पन्न प्राणी रहे काँपते ।
यूथ विस्तार होता गया साथ ही,
बाढ़ मंडूक की हो यथा वृष्टि में ।।३३।।

श्वान हैं भूकते सिंह क्या बोलता,
गर्जना से तथा मौन गांधी रहे।
क्षुद्र कीटाणु के त्रास से नाग क्या,
भीत होता कभी, शांत नेता रहे ॥३४॥

क्रुद्ध गोरे सभी देखते राह थे,
त्रस्त गांधी अभी आ रहा सामने।
किन्तु देरी हुई लक्ष्य भी दूर था,
क्रोध-ज्वाला बढ़ी सिन्धु की अग्नि-सी ॥३५॥

दूसरे द्वार से पूज्य के पास जा,
प्रार्थना विज्ञ कप्तान ने की वहाँ।
"आप जो सेठ का चाहते हैं भला,
वंश का नाश भी चाहते हैं नहीं ॥३६॥

भस्म कोठी नहीं हो महा ज्वाल से,
संपदा क्षार होती नहीं, पूर्व ही।
दूसरे वेश में कोतवाली चलें
सिद्ध होगी अहिंसा यहाँ आपकी" ॥३७॥

बात सन्मित्र की मान गांधी गए,
शीघ्र कप्तान ने वृन्द से जा कहा।
"शांति धारो, अभी गेह फूँको नहीं,
शत्रु को ले यहाँ वृक्ष से बाँध दो ॥३८॥

अन्य को मार, क्या लाभ होगा भला,
एक ही व्यक्ति से शत्रुता आप की।
मुख्य नेता चुनो सब में जा उसे,
बाँध लें, वृन्द के सामने ला करें ॥३९॥

जो न गांधी मिलें गेह में आप को,
शांति से लौट आओ यहाँ से सभी।
पूर्ण स्वीकार हो बात मेरी अभी,
कार्य हो सिद्ध उत्पात के ही बिना" ॥४०॥

चार नेता गए धाम में खोजने,
हाथ को मींजते लौट आए तभी।
जाल से दूर नागरि स्वच्छन्द है
भाग्य को कोसने वे लगे खेद से ॥४१॥

आपदा घोर थी छा गई भाग्य से,
धीर कप्तान ने शान्ति लाई वहाँ।
तीव्र निन्दा हुई कृत्य की विश्व में,
तार ऐस्क्म्ब को आ गया राज्य से ॥४२॥

"दंड विद्रोहियों को मिले साथ ही,
प्राण-रक्षा करो हिन्द के वीर की।
भेंट ऐस्क्म्ब-गांधी हुई यों कहा,
"शोक है राज्य को कष्ट से आपके ॥४३॥

नाम विद्रोहियों का मुझे आप दें,
जेल को भेज दूँगा उन्हें दण्ड दे।
आपके चित्त को शान्ति होगी तथा,
दुष्ट-उत्पात का अन्त होगा अभी" ॥४४॥

"चाहते आप हैं दण्ड देना जिन्हें,
दोष से मुक्त ही मानता मैं उन्हें।
लोक सद्भावना राज्य ने नष्ट की
मानते वे इसी से मुझे शत्रु हैं ॥४५॥

दंड देना न स्वीकार है अज्ञ को,
हैं स्वयं क्षम्य वे सर्वथा जानिए।
सज्जनों का यही सर्वदा धर्म है,
नित्य अन्यायियों को क्षमा ही करें ॥४६॥

आम्र के वृक्ष से भी गिरा व्यक्ति क्या,
भेंट देते फलों को सहें चोट को।
पीसते पत्थरों से हिना को सभी,
है वही हाथ को दिव्य देती बना ॥४७॥

पुष्प को छेदते सूचिका से अरे,
कंठ की शुभ्रता को बढ़ाते वही।
पीसते चन्दनों को जभी व्यक्ति हैं
गंध दे क्या सदा मोद देते न वे ॥४८॥

फूल को तोड़ने वायु जाती जभी,
वे उसे गंध देते बनाते यशी।
है जलाती सदा वारि को अग्नि ही
पाथ क्या अग्नि को शांति देता नहीं ॥४९॥

दिव्य शिक्षा महा ख्रीष्ट देते यही,
मारता गाल में एक कोई कभी।
दूसरा गाल भी सामने कीजिए,
क्रोध की भावना नष्ट होगी तभी ॥५०॥

जेल में भेजना शत्रुओं को नहीं,
चाहता मैं कभी भूल से, ऐ सखे।
मुक्ति के हेतु ही प्राणियों की यहाँ,
आ गया दूर से दैव संयोग से ॥५१॥

आप जो चाहते मोद देना मुझे,
तो क्षमा कीजिए द्रोहियों को सभी।
भूल विज्ञात होगी, उन्हें आप ही,
ताप होगा महाघोर अन्याय का" ॥५२॥

नम्रता से कहा व्यग्र ऐस्कम्ब ने,
"आप का बाल बाँका न होगा यहाँ।
ईशु के तुल्य ही दीखते आप हैं,
जाइए दीन उद्धार को कीजिए" ॥५३॥

अन्त में गेय गांधी गये गेह को,
प्रान्त में पूर्ण थी शान्ति छाई वहाँ।
शुभ्र गांधी-क्षमा से नहीं रोष था,
ईशु का रूप जाना उन्हें लोक ने ॥५४॥

क्षिप्र बैरिस्टरी कार्य में वे लगे,
आय होने लगी नित्य ही वेग से।
किन्तु ईर्ष्यालु गोरे जले द्वेष से,
वे जगाने लगे वैर की भावना ॥५५॥

नाइयों ने दिया बाल का काटना,
त्याग धोना दिया धोबियों ने तभी।
किन्तु गांधी कभी हार क्या खा सके,
शान्ति के पंथ में नित्य आगे बढ़े ॥५६॥

शीघ्र नाई तथा दिव्य धोबी बने,
काटते बाल को, वस्त्र धोते स्वयं।
देख संधीरता, वीरता ढंग थे,
हार गोरे गए युक्ति के सामने ॥५७॥

भानु के तेज को मेघ-माला कहीं,
घेर पाती कभी नष्ट होती सही।
त्यों वहाँ तेज छाता गया वीर का
वैरियों की विभा नष्ट होती गई ॥५८॥

कार्य आधिक्य से बाल शिक्षा रुकी,
वे बड़े हो रहे थे बिना ज्ञान के।
पूज्य गांधी-प्रिया ने कहा कान्त से,
"पुत्र को भेजिए पाठशाला प्रभो" ॥५६॥

धीर गांधी सुधी ने कहा प्रेम से,
"है पढ़ाना सभी बालकों को, प्रिये।
किन्तु विद्यालयों में नहीं आज है,
हो रही दिव्य शिक्षा किसी अंश में ॥६०॥

राज शिक्षा कभी लोक की भावना,
युक्त होती नहीं, दासता ला रही।
स्वावलम्बी न होते कभी छात्र हैं,
जीविका से सदा हीन वे हो रहे ॥६१॥

आज विद्यालयों में नहीं छात्र, जो,
ब्रह्मचारी, सदाचार की मूर्ति हों।
पितृ के त्रास से हीन स्वच्छन्द हो,
शिष्टता नम्रता से सदा दूर हैं ॥६२॥

पाठशाला नहीं चाहता भेजना,
बालकों को पढ़ाऊँ स्वतः गेह में।
सभ्यता की उन्हें पूर्ण शिक्षा मिले,
विश्व में योग्य सत्कर्मशाली बनें ॥६३॥

प्रात-संध्या पढ़ाता रहूँगा स्वयं,
सर्वथा योग्य शिक्षा मिलेगी उन्हें।"
ज्ञान-भांडार ऐसा दिया पूज्य ने,
शुभ्र संस्कार आ बालकों में गये ॥६४॥

ईश-आराधना में मनोयोग से,
'बा' बिताती रहीं काल को साथ ही।
स्वामि-सेवा महाधर्म थीं जानती,
जानकी, रुक्मिणी-देवियाँ तुल्य ही ॥६५॥

धर्म की रुढ़ियों से घनी प्रीति थी,
'बा' छुआ छूत को चित्त से मानती।
आगतों के कभी पात्र उच्छिष्ट को,
थीं नहीं माँजती धर्म के त्रास से ॥६६॥

भेद को भावना देख गाँधी व्रती,
थे बताते उन्हें धर्म के मर्म को।
विश्व-बन्धुत्व का पाठ देते कभी,
'बा' सुआदर्श नारी बनें सृष्टि में ॥६७॥

दैव संयोग से तात के भेंट को,
अन्य धर्मावलम्बी कभी आ गया।
चाय पी ज्यों गया मित्र के पास से,
पात्र, 'बा' ने न धोया अहं भाव से ॥६८॥

धृष्टता देख आवेश में नाथ ने,
द्वार के मध्य 'बा' को किया खींचते।
'गेह से दूर जाओ कहा रोष से,
धर्म मेरा बताता यही है मुझे ॥६६॥

"है यहाँ कौन मेरा, जहाँ आ रहूँ,"
क्षुब्ध 'बा' ने कहा व्यग्र रोते हुए।
'आश्रितों को हटा दे निरालम्ब यों,
क्या यही धर्म है, न्याय है, हे सखे' ॥७०॥

शीघ्र 'बा' को हुआ ज्ञान हृद्देश में,
भूल मेरी नहीं, दोष है तात का।
ईश के पुत्र हैं सृष्टि वासी सभी,
पंच तत्वों बनी देह है लोक की ॥७१॥

नाथ से नम्र कस्तूर बा ने कहा,
"शीघ्र उद्धार मेरा करो पाप से।
आप के लक्ष्य की थाह पाती नहीं,
सीप में सिंधु का वारि आता कहाँ ॥७२॥

देख संताप 'बा' का बड़े प्यार से,
मुस्कराते लगाया उन्हें अंक से।
ग्लानि 'बा' की गई शीघ्र ही देखते,
रोग निर्मूल होते यथा वैद्य से ॥७३॥

चित्त से भेद का भाव जाता रहा,
विश्व-बन्धुत्व का भाव जागा नया।
'बा' बिताने लगीं काल को प्रेम से,
पूज्य-आराध्य के संग में योग से ॥७४॥

शीघ्र ही ज्ञात भी हो गया लोक को,
तात हैं जा रहे देश को त्यागते।
शोक के सिन्धु में मित्र थे डूबते,
दीखता था न कोई सहारा उन्हें ॥७५॥

सेठ के संग मित्रादि ने आ कहा,
"पूज्य बापू न जायें अभी देश को।
प्रेम की बल्लरी को बढ़ाई उसे,
मध्य में ही सुखायें न दुर्भाग्य से ॥७६॥

भाव से जो लगाते कभी वृक्ष हैं,
काटते वे नहीं हैं उसे स्वप्न में।
यात्रियों को चढ़ा क्या कभी पोत में,
सिन्धु के मध्य में है डुबाना भला ॥७७॥

पाठ स्वाधीनता का अधूरा अभी,
पास होंगे नहीं हिन्द वासी कभी।
लक्ष्य है दूर, हैं मार्ग के मध्य में,
क्या हमें त्यागना योग्य है आपको ॥७८॥

स्नेह से युक्त बातें सुनीं, देव के,
चक्षु में अश्रु की बिन्दुएँ छा गईं।
प्रेम प्रत्येक का झाँकता था खड़ा,
देख आराध्य को तोष भारी हुआ ॥७९॥

व्यक्तियों के महा मोह से हो दुखी,
धैर्य दे, क्लेश को वे लगे मेटने।
मोह से मुक्त हो वे गये, ज्ञान था,
पूर्ण सामर्थ्य के भाव में वे रँगे ॥८०॥

भोज-उद्यान ही हो रहा था जभी,
सेठ, कांग्रेस नेता वहाँ थे सभी।
प्रेम संयुक्त संक्षिप्त वक्तव्य दे,
भेंट में रत्न इत्यादि देने लगे ॥८१॥

दी महामूल्य की वस्तुएँ तात को,
देखते लोभ होता नरेशादि को।
स्नेह के रूप में ले लिया भेंट को,
धन्यवादादि दे संविदा ले लिया ॥८२॥

हार कस्तूर बा को मिला एक था,
दूसरा जोड़ का विश्व में था नहीं।
पूज्य ने ला दिया हार को दार को,
देखते वस्तुएँ 'बा' हुई मुग्ध थीं ॥८३॥

विज्ञ गांधी लगे सोचने गेह में,
भेंट को ले रखें पास में या नहीं।
व्यक्ति के रूप में वस्तु पाई नहीं,
है मिली देश-सेवा तथा भक्ति में ॥८४॥

किन्तु 'बा' ने कहा ज्ञात ज्यों हो गया,
आप को ही मिली है नहीं अन्य को।
भेंट की वस्तुएँ आप देंगे कहीं,
मैं मिला हार दूँगी नहीं भूल से ॥८५॥

भूमि में कौन है शक्तिशाली महा,
मोह लेती नहीं दुष्ट माया जिसे।
विश्व-माता बनी बाद में जो कभी,
हार के हेतु था मोह होता उसे ॥८६॥

"देश के सेवकों को नहीं योग्य है,
भेंट को ले लगावें स्वकल्याण में।
भेंट के अर्थ को ले, उसे देश के,
कार्य में ही लगाना सदा है भला ॥८७॥

देश के द्रव्य को मैं न लूँगा कभी,
भेंट का हार देना पड़ेगा तुम्हें।
लोक सेवार्थ ही वस्तुएँ हैं मिलीं,
शीघ्र है सौंप देना उसे देश को ॥८८॥

[द्रुत विलम्बित]

समिति एक बना कुछ व्यक्ति की,
अतुल भेंट मिली उस देश की।
स्वजन के उपकार निमित्त ही,
सम्मुद सौंप चले निज देश को ॥८९॥

सप्तम् सर्ग

अफ्रीका निवास (३)

[इन्द्र वंश]

गांधी यहाँ आ निज कार्य को लगे,
निश्चिन्त हो ज्यों करने स्वदेश में।
नैटाल से तार तुरन्त आ गया,
"आओ सुघी चैम्बर लेन से मिलो" ॥१॥

ले कार्य कर्ता फिर चार संग में,
तत्काल गांधी पहुँचे विदेश में।
वार्ता पुनः चैम्बरलेन से हुई,
ऐसा उन्होंने फिर तात से कहा ॥२॥

"है सत्य बातें कह आप जो रहे,
चेष्टा करूँगा सब कष्ट दूर हो।
कर्त्तव्य ऐसा मन से कुली करें,
सन्तुष्ट गोरे सब भाँति ही रहें" ॥३॥

गांधी हुए चैम्बर से निराश थे,
संकल्प ऐसा फिर चित्त में किया।
तत्काल वे भारत को न जायँगे,
सेवा करेंगे रह धैर्य से वहाँ ॥४॥

था ध्वस्त ही बोअर युद्ध से हुआ,
प्राणी बचे थे कुछ ट्रान्सवाल में।
आदेश लेते, अधिकार पूर्ण हो,
गोरे वहाँ जा बसने लगे पुनः ॥५॥

आज्ञा न थी प्राप्त कुली समूह को,
जायें यथा पूर्व रहें वहाँ, अरे।
उद्योग ऐसा करने लगे पिता,
जा हिन्द वासी उस भाग में रहें ॥६॥

भंगी मुहल्ला कहते जिसे, वहीं,
गांधी लगे जा रहने समीप में।
सेवा यथा योग्य करें अनाथ की,
रक्षा करें नित्य अपार दुःख से ॥७॥

सम्पूर्ण शौचालय की बुरी दशा,
थे रोग आक्रान्त कुली इसी लिए।
गांधी धुलाने उनको लगे स्वयं,
धोने लगे प्रेम दिखा उदारता ॥८॥

शिक्षा बढ़ाने उनमें लगे तथा,
आने लगी मानवता शनैः शनैः
फैला वहाँ प्लेग अभाग्य से अरे,
फूका मुहल्ला फिर शत्रु से गया ॥९॥

गांधी सुधी ने सब को फिनिक्स में,
ले जा बसाया जन शून्य भाग में।
प्रत्येक को एकड़ तीन भू मिली,
खेती निराले पुरुषार्थ से करें ॥१०॥

आत्मावलम्बी सब को बना दिया,
आयी नई शक्ति कुली समाज में।
व्यक्तित्व जागा उनमें अपूर्व ही,
साश्चर्य गोरे सुविकास देखते ॥११॥

जाना नहीं है अति शीघ्र देश को,
सारी समस्या सुलझे बिना पुनः।
कस्तूर बा को, सब पुत्र को बुला,
तत्काल रक्खा निज संग में वहाँ ॥१२॥

संयोग से ही सुत रामदास की,
टूटी भुजा थी जलयान में अहो।
मिट्टी उन्होंने बस बाँध बाहु में,
अच्छा किया केवल एक मास में ॥१३॥

मिट्टी बँधाते, सब रोग मात्र को,
अच्छा लगे वे करने तुरन्त ही।
प्रख्यात गांधी फिर वैद्य हो गए,
की स्वास्थ्य रक्षा निज शुभ्र युक्ति से ॥१४॥

चक्की चलाते सुत संग में वहाँ,
लज्जा नहीं वे करते कदापि थे।
'बा' थीं बनाती निज खाद्य को स्वयं,
प्राणी सभी देख सदा सराहते ॥१५॥

उद्योग शाली बनने लगे सभी,
जाना उन्होंने निज बाहु शक्ति को।
वे दीनता से उठने लगे शनैः,
कर्मण्यता का वर पाठ था पढ़ा ॥१६॥

तत्काल सत्याग्रह छेड़ भी दिया,
बाँधा गया था 'कर' तीन पौंड का।
गोरे हुए क्रुद्ध अपार वेग से,
अन्याय भारी करने लगे तभी ॥१७॥

भोले प्रवासी अति धैर्य को दिखा,
आगे बढ़े लेश हटे न लक्ष्य से।
खा गोलियाँ भी कितने मरे वहाँ,
फूँक गए हा! कितने स्वगेह में ॥१८॥

सम्पत्ति सारी फिर छीन ली गई,
कोरे भिखारी कितने बने अरे।
सन्तान हो आश्रय हीन घूमती,
कोई सहारा उनका रहा नहीं ॥१९॥

खोला नया आश्रम एक तात ने,
रक्खा सभी को असहाय जो हुए।
देने लगे वे शिशु को भविष्य में,
शिक्षा निराली निज पुत्र संग में ॥२०॥

जेलें भरीं हीन कुली समाज से,
कोई न बैठा निज गेह में रहा।
उत्साह ऐसा जन में विलोकते,
गांधी महात्मा मन में विमुग्ध थे ॥२१॥

नारी बढ़ीं केतु उठा स्व हस्त में,
ज्यों वीर प्यारे जन जेल को गये।
आती दया थी अरि को न लेश भी,
वे दंड देते तब जेल भेजते ॥२२॥

बन्दी हुए तात पुनः स्व शत्रु से,
जो शान्ति आराधक ही रहे सदा।
आतंक छाया सब देश में वहाँ,
था क्रूरता का वह काल जानिए ॥२३॥

कर्तव्य भंगी-कुल का मिला उन्हें,
अन्यायकारी व्यवहार था हुआ।
शौचालयों के मल को उठा उठा,
बाल्टी भरे जा कर दूर फेंकते ॥२४॥

सोचा यही था सरकार ने स्वयं,
बंदी दुखी हो कर हार जायगा।
आनन्द से किन्तु प्रदत्त भार को,
गांधी निभाते मृदु भाव से रहे ॥२५॥

विश्राम लेते पल भी नहीं कभी,
सम्पूर्ण धोते मल कक्ष को स्वयं।
देखी गई थी इस भाँति स्वच्छता,
शौचालयों में कब भूत काल में ॥२६॥

उच्चाधिकारी जब देखने गया,
होगा व्रती चिंतित निम्न कार्य से।
आशा न पूरी उसकी हुई, सुना,
सन्तुष्ट बन्दी निज कर्म से महा ॥२७॥

आज्ञा हुई तत्क्षण दुष्ट को उसी,
दुर्दान्त बंदी उस जेल में रहा।
"शीघ्राति गांधी-व्रत भंग हो, वही,
आतंककारी अघ कार्य को करे ॥२८॥"

विश्वास दे आ कर उग्र भाव से,
गांधी प्रतीक्षा करने लगा वहाँ।
ज्यों तात बैठे मल त्याग-हेतु थे,
सीधे खड़े हो मल को किया स्वयं ॥२९॥

गांधी शिखा से मल युक्त हो गए,
बोले नहीं वे चुप चाप ही रहे।
जैसे दुरात्मा कृत कार्य हो गया,
माँगी क्षमा त्यों उससे सुधीन्द्र ने ॥३०॥

"होगा हुआ कष्ट अपार आप को,
जाना नहीं था भवदीय भाव को।
इच्छा जभी हो, निज शीश को झुका,
मैं बैठ जाऊँ, निज शौच को करो" ॥३१॥

कैसा अचम्भा जन को हुआ तभी,
देखा महा क्रूर अघोर हो रहा।
रोने लगा था कर बद्ध सामने,
माँगी क्षमा कोटि अपूर्व देव से ॥३२॥

प्राणी सभी थे उस काल रो रहे,
अन्याय को देख अचेत हो रहे।
दुस्साध्य जाना सब ने स्वमुक्ति को,
गांधी व्रती की पर जीत थी हुई ॥३३॥

वर्षों रहा युद्ध छिड़ा विचित्र ही,
मानी न थी हार अनेक यत्न से।
सारे प्रवासी दुख झेलते रहे,
बन्दी बने पीड़ित थे, अनाथ हो ॥३४॥

संत्रस्त बीते दश वर्ष कष्ट में,
उन्नीस सो चौदह आ गया पुनः।
सद् ज्ञान जागा अरि में निदान ही,
तत्काल तोड़ा 'कर' तीन पौंड का ॥३५॥

छोड़े गए भारत वीर जेल से,
उल्लास छाया उनमें अपार था।
गांधी महात्मा चरणारविन्द में,
आ आ झुकाने सब शीश को लगे ॥३६॥

"हे नाथ, आते यदि देश में नहीं,
अत्यन्त आपत्ति अतीव भोगते।
स्वाधीनता को हमको दिला दिया,
शिक्षा निराली जन को प्रदान की ॥३७॥

नैटाल-धाता बस नित्य जानते,
कीटादि से भी पशु से गिरा हमें।
सौभाग्य दाता हम मानते उन्हें,
आजन्म-सेवी उनका विचारते" ॥३८॥

सत्कार नाना विधि पुष्प से किया,
टीका लगाया वर चन्दनादि से।
भूपेन्द्र थे भारत के बने मनो,
शोभा बताई किस भाँति जा सके ॥३९॥

देते बधाई फिर पूज्य ने कहा,
संलक्ष्य पूरा मम हो गया, सुनो।
जाने मुझे दो, निज देश में वहाँ,
स्वाधीनता का नव युद्ध छेड़ना ॥४०॥

गांधी विदा ले जब मेद्र को चले,
त्यों विश्व संग्राम छिड़ा प्रकोप से।
गांधी रुके जा इँगलैंड में तभी,
आए वहाँ से कुछ मास में यहाँ ॥४१॥

[द्रुत विलम्बित]

नियम टूट गया त्रय पौंड का,
पर कुलीपन था न गया वहाँ।
सतत यत्न किया जब तात ने,
वह मिटी जड़ से कुछ वर्ष में ॥४२॥

———

अष्टम सर्ग

भारत-भ्रमण

[वसंत तिलका]

कैसा शुभावसर था जब वीर गांधी,
नैटाल से मुदित भारत को पधारे ।
फूले नहीं सहज बन्धु समा रहे थे,
खोया हुआ परम रत्न पुनः मिला था ।।१।।

स्वातंत्र्य-भानु निकला अति ही विभा से,
फूले स्वदेश जन के मन-पद्म सारे ।
वैरी अहो, कुमुद-से सकुचे निराले,
श्वेतांग शासक हुये हत-भाग्य जानो ।।२।।

सम्मान पूर्ण विधि से अपने सखा को,
देने लगे शुभ सभा कर देश वासी ।
जैसा मिला अतुल आदर बन्धुओं से,
देखा गया भुवन में उस भाँति क्या है ?।।३।।

फीरोज शाह सम ही कुछ देश सेवी,
राष्ट्रीयता अखिल में नित थे जगाते।
गोपाल कृष्ण जन के अति पूज्य नेता,
थे कर्णधार दुख वारिधि में सभी के ॥४॥

गांधी मिले बहुत हर्षित गोखले से,
दोनों स्वराज्य वर नाविक से दिखाते।
आधीनता अघ महा तम को हटाने,
मानो प्रभाकर तथा शशि राजते थे ॥५॥

गोपाल ने स्वजन के दुख की कहानी,
अत्यन्त खिन्न मन से उनको सुनाई।
वाणी महा विकल कातर हो रही थी,
प्रेमाश्रु थे छलकते उनके दृगों में ॥६॥

"जाओ सखे, विपुल गाँव जहाँ बसे हैं,
देखो सभी नरक का दुख झेलते हैं।
होना अधीर मन में कुछ भी न आगे,
जा देखना विविध भाँति निवासियों को ॥७॥

कोई कहीं वसन हीन सखे, मिलेगा;
होगी अहो, वदन में बस जीर्ण धोती।
प्यारे प्रयत्न कर संप्रति वस्त्र देना,
लज्जा समस्त अपनी जिससे बचा लें ॥८॥

हा, भूख से बिलखते जन भी मिलेंगे,
आहार से उदर को भर जो न पाते।
हैं बाल, दुग्ध जिनको मिलता नहीं है,
आरोग्य से रहित दुर्बल देह धारी ॥९॥

तीर्थादि में विपुल भिक्षुक पास जाते,
मानी धनी पुरुष को करुणा सुनाते।
दे अन्न भूख हरना, गरिमा बढ़ाना,
माँगे न भीख दिखला कर पेट को वे ॥१०॥

जाना, दुखी कृषक से मिलना, उसी के,
सम्पूर्ण जीर्ण घर की छत देख लेना।
आषाढ़ में जलद बिन्दु न रोक पाती,
पानी समस्त गिरता गृह-मध्य में है ॥११॥

वे शीत में अतुल कष्ट सदैव पाते,
हा, अग्नि के निकट में निशि हैं बिताते!
वर्षा कहीं विषमता कुछ है दिखाती,
वे भोगते तब मनो यम-यातना को ॥१२॥

हैं सप्त कोटि अति हीन अछूत वासी,
आराध्य हो, विभव वञ्चित सर्वथा हैं,
अस्पृश्य ही समझते उनको, इसी से,
छूते न पास रखते द्विज भूल-से हैं ॥१३॥

वे कूप से जल नहीं भरते द्विजों के,
होते प्रविष्ट न कभी वर मन्दिरों में।
सम्मान आत्म बल से गिर, हीनता में,
प्यारे अछूत पशु-सा सुख हैं न पाते ॥१४॥

जातीय भाव-रस को उनको पिलाना,
संत्रस्त दीन जन को द्विज से मिलाना।
दुर्ग्लानि से व्यथित हो पर धर्म की ही,
संख्या अहो! पृथक हो कर जो बढ़ाते ॥१५॥

आतंक देश भर में दुख दैन्य का है,
होगान क्लेश जग में इतना कहीं भी।
अंग्रेज शासक यहाँ खलते सभी को,
हैं भारतीय रहते जड़-सा धरा में ।।१६।।

आत्माभिमान, गुरुता, उनमें जगाना,
खो भीतिता हृदय की लघुता मिटाना।
लें जन्म-सिद्धि अपना अधिकार सारा,
श्री मातृभूमि-रति हो मन कर्म से ही।।१७।।

सम्पूर्ण देश भर में अविराम जाना,
दे एक वर्ष शुभ साधन में बिताना।
होगी सभी विदित भारत की व्यवस्था,
सन्मित्र भी सहज में तुमको मिलेंगे" ।।१८।।

बातें सभी श्रवण थे करते सखा की,
हृद्देश-मध्य करुणा महती जगी थी।
संकल्प ले अचल-सा गुरु से कहा यों,
'तत्काल ही बचन पालन वे करेंगे ।।१६।।'

आनन्द से भ्रमण को निकले अकेले,
ले शक्ति एक जगदीश्वर की निराली।
स्वर्गीय देश-सुषमा कमनीयता को,
वे मार्ग में निरखते अति रीझते थे।।२०।।

उद्यान में नव रसाल कहीं फलों का,
निस्वार्थ दान करते निज आश्रितों को।
खाते जिन्हें शुभ सुधा रस को भुलाते,
सानन्द सर्व खग थे गुण-गान गाते ।।२१।।

थे विम्ब वृक्ष अपने रस में दिखाते,
आते विहंग गण थे फल को न पाते।
कंजूस का न धन है पर हेतु आता,
वैसे कठोर छिलका द्विज को भगाता ।।२२।।

श्यामाभ जम्बुक कहीं अति शोभती थी,
निस्वार्थ मिष्ट फल भूतल में गिराये।
आबाल-वृद्ध उनको कर से उठाते,
खाते बखान करते, घर साथ लाते ।।२३।।

भारी कहीं पनस थे, कमला निराली,
जो शोभती अरुणिमा अपनी दिखाते।
अश्रान्त आमलक था फल को लुटाता,
थी कर्णिकी निकट में फल को बिछाती ।।२४।।

अश्वत्थ शीश अपना नभ में उठाए,
बाहें बढ़ा गगन में गुरुता दिखाता।
था गर्व से स्वशिर को सिरसा उठाए,
टेसू बबूल अपने रँग में रँगे थे ।।२५।।

ऊँचे सिफारुह कहीं कमनीय छाया,
पंथी निमित्त करते पथ में खड़े थे।
नाना विहंग फल खा सुख से अनूठे,
दे धन्यवाद उनको, कल कूजते थे ।।२६।।

छाया निमित्त इमली सुवितान ताने,
थी झूमती सघुद डाल बढ़ा दिशा में।
था शाल्मली अकड़ता, निज शुभ्रता से,
रंगीन फूल दिखला कर था रिझाता ।।२७।।

चम्पा, कहीं कमक थी, कटु निम्ब देती,
सानन्द वायु शुचि शीतल स्वास्थ्यकारी।
रीवाँ, अशोक, बहु पाकड़ि, कैथ, नेबू,
थे नारिकेल, करवीर, कलिन्द काले ॥२८॥

थीं मार्ग में विविध शोभित वाटिकाएँ,
जो मोहती सुमन से सब दर्शकों को।
आराम देवपुर का समकक्षता में,
अत्यन्त हीन लगता सुर-राज को भ॥२६

बेला, गुलाब, कुसुमाधिप शुभ्र जूही,
फूली कहीं अतुलनीय छटा दिखाती।
दे कामिनी अनिल को स्वपराग मीठा,
थी गंध पूर्ण करती सब ही दिशाएँ॥३०॥

ऊँचे कहीं शिखर से रमती चिढ़ाती,
थी मालती कुसुम को शुभ गंध वाले।
जैसे महा अधम पा कर उच्च छाया,
हैं लेश भी समझते न किसी गुणी को॥३१॥

अत्यन्त ही महक से निज रात्रिरानी,
थी स्वामिनी शुभ बनी कुसुमावली में।
गेंदा कहीं निज नई कमनीयता से,
था भूमता सतत ही गुण हीन जैसा॥३२॥

धीमी सुगंध अपनी बिखरा चमेली,
थी वायु मादक बना जन को बुलाती।
प्रेमी समीप मुद से कर को बढ़ाते,
ले चारु पुष्प निज हार वहाँ बनाते ॥३३॥

जम्बी पवित्र करती वन भूमि को थी,
आ साधु सन्त, उसके शुभ पत्र लेते ।
थे साथ में कुसुम को चुनते निराले,
जा देव-मूर्ति पर थे उनको चढ़ाते ।।३४।।

अंगूर, सेब, कदली, बहु नासपाती,
लीची, सुबेर, अमरूद अनेक मेवे ।
थे पंक्ति बद्ध अति शोभित वाटिका में,
खाते विहंग कपि थे जिनको चुराते ।।३५।।

था शस्य संयुत धरातल भाग कोई,
आशा भरे कृषक थे जिनमें दिखाते ।
गेहूँ, कहीं यव, कहीं सरसों उगी थी,
पीला हरा मिल छटा बनती निराली ।।३६।।

अत्यन्त शीत सहते श्रम जीवियों का,
था वृन्द कार्य करता अति धीरता से ।
तालाब से जल बहा कृषि सींचते वे,
थे हाथ पैर अकड़े रहते हवा में ।।३७।।

फूली हरी मटर की कमनीयता से,
छाती अतीव गरिमा नव वाटिका-सी ।
होता प्रसन्न मन था कृषि जीवियों का,
वे सर्व कष्ट पल में बस भूल जाते ।।३८।।

नीली, चना सँग कहीं अलसी उगी थी,
श्यामा अनूप कुसुमावलि राजती थी ।
लेते उखाड़ जन शुभ्र चना कहीं से,
खाते तथा अनल में कुछ भूनते थे ।।३९।।

गन्ने कहीं सरस मिष्ट उगे हुए थे,
जाते समीप नर थे झट तोड़ लेते,
आती दया न उनको लवलेश भी थी,
थे खण्ड-खण्ड करते रद से पुनः वे ।।४०।।

ले इक्षु खण्ड जन थे कल में लगाते,
लाचार शुभ्र रस को अपने गिराते ।
जैसे महा कृपण से धन छीनते हैं,
दे घोर भाँति सहया कर कर्मचारी ।।४१।।

दुस्सह्य माघ निशि का सह घोर जाड़ा,
कोल्हू चला कृषक थे रजनी बिताते ।
निर्माण नित्य करते गुड़ साथ में थे,
ऐसे महाव्रत धनी विरले मिलेंगे ।।४२।।

जाती सुमन्द गति से सरिता कहीं थी,
होता न बन्द चलना उसका कभी भी ।
संदेश क्या भुवन को वह दे रही थी,
स्वार्थी न विश्व सुनता उसका कभी था ।।४३।।

नाना तरंग विधि से निज भावना को,
थी नित्य व्यक्त करती वह दर्शकों को ।
स्वच्छन्द मूढ़ सुनते उसका भला क्या,
सौंदर्य देख सुख से घर लौट जाते ।।४४।।

कोई प्रवेश करता पद से, करों से,
आघात दे विविध भाँति उसे दुखाता ।
संतोष जो न मिलता फिर थूकता था,
गंदा, पवित्र जल को करता सदा था ।।४५।।

नाला कहीं नगर से गिरता मिलाता, ।।४६।।
दुर्गन्ध-मूल-मल-मूत्र कुवस्तुओं को ।
धोते कहीं मलिन वस्त्र अनेक धोबी,
संलग्न हो विमलता जल की मिटाते ।

प्राणी अनेक शव को जल में बहाते,
थे लौटते भवन को ममता भुलाते ।
प्राणी चिता रच वहाँ शव को जलाते,
सम्पूर्ण राख जल में फिर छोड़ जाते ।।४७।।

दुष्कृत्य से न सरिता कुछ खिन्न होती,
गंभीर धीर पथ से बहती सदा थी ।
होता पवित्र जल से सब शुद्ध जैसे,
मार्तंड-रश्मि, मल-दोष-विकार खोती ।।४८।।

माहात्म्य युक्त जल को जन देखते थे,
सद्भक्ति से कुसुम चन्दन को चढ़ाते ।
पूजा अनेक विधि से करते नदी की,
सोल्लास भक्त,जय से दिशि को गुँजाते ।।४६।।

न्यारे सरोवर कहीं लहरा रहे थे,
थे नील शुभ्र जल-जात अनेक फूले ।
सौन्दर्य को निरखते मन मुग्ध होता,
स्वच्छन्द छन्द रचते कवि भी कहीं थे ।।५०।।

लीलामयी प्रकृति की कमनीयता की,
साकार मूर्ति निज मातृ-धरा-विभा को ।
देखा जभी हृदय में अनुराग बाढ़ा,
उत्साह भी भ्रमण का बढ़ता गया था ।।५१।।

श्री राजपुत्र-रण-भूमि प्रदेश देखा,
आभा वहाँ रजत सी बिखरी हुई थी।
थी वालुका शुभ्रमयी अति कांति वाली,
प्रत्येक भव्य कण में गरिमा छिपी थी ।।५२।।

स्वातंत्र्य-हेतु बलिवीर हुए करोड़ों,
वे अस्थियाँ बस बनी वर रेणुका थीं।
सत्कार से कण उठाकर धीर गांधी,
नेत्रादि में, सश्रद्ध मस्तक में लगाते ।।५३।।

रत्ना स्वदेश जन की करते सदा से,
सत्प्रान्त के बलि हुए बलवीर योद्धा।
संतप्त हो इस लिए यह देश रूखा,
वैसी अरे सरसता फिर से न आई ।।५४।।

उत्तप्त भानु-किरणें पड़ती कभी हैं,
संदर्प शुभ्र कण में जगता तभी है।
वे बार-बार करते रवि को चढ़ाई,
होती न सह्य उनको पर-उग्रता है ।।५५।।

आता निशाकर जभी निज चन्द्रिका से,
है शान्त नित्य करने उनकी व्यथा को।
वे शीघ्र ही विहँसने लगते तभी हैं,
शोभा वहाँ रजत सी कण में दिखाती।।५६।।

है मन्द शीतल जभी वह वायु देती,
विश्रान्ति पूर्ण करती कमनीय सेवा।
प्रेमाश्रु से रजनि भी जब सींचती है,
उद्विग्नता तब कहीं फिर दूर होती ।।५७।।

उत्पन्न वीर करती यह भूमि रानी,
होता न मोह जिनको निज जीव का है।
देते पराजय सदा निज बैरियों को,
ब्रह्माण्ड में न रखते समकक्ष कोई ।।५८।।

स्वातंत्र्य हेतु तन की, धन की न माया,
होती कमी समुद के बलिदान होते ।
सम्मान से रहित, दास नहीं कहाते,
स्वर्गीय हो, स्वरिपु को रण में सुलाते ।।५६।।

गोरा तथा अमर बादल की कहानी,
संसार में अमर हो कर ही रही है ।
है पद्मिनी चमकती अब भी कथों में,
सुल्तान मुग्ध, जिससे अपमान पाया र ।।६०।।

रक्खा सतीत्व, तन को हवि-सा बनाया,
वीराङ्गना सकल ले उसने जलाया ।
विक्षुब्ध हो अनिल ने रज को उड़ाया,
दिल्लीश ने नमित हो गुण-गान गाया ।।६१।।

ऐसा अपूर्व वर जौहर जो हुआ है,
ब्रह्माण्ड में न उपमा उसकी दिखाती ।
सत्पूज्य आज हम हैं उन देवियों के,
चारित्र्य, धर्म, तप पावन सद्गुणों से ।।६२।।

मेवाड़ की विजय भूमि बता ही है,
राणा प्रताप सम वीर नहीं धरा में ।
आत्माभिमान जिसने तिल भी न खोया,
भोगे स्वयं विपुल दुःख घने वनों में ।।६३।।

साम्राज्य का न पद था जिसको लुभाता,
दिल्लीश के समर से झुकना न जाना।
भाला सदैव कर में, निज राष्ट्र झंडा,
ऊँचा रहा, भुवन में प्रण को निभाया ॥६४॥

वीरत्व भाव भरता निज उक्तियों से,
उत्सर्ग प्राण करते जन थे जिन्हों में।
स्वातंत्र्य-दीप बुझने न कदापि पाया,
देता प्रकाश अब भी इस देश को है ॥६५॥

जा गाँव-गाँव सब के सुख संकटों को,
गाँधी वहाँ निरखते अति धीरता से।
आगे बढ़े विविध भाँति विहार देखा,
दुःखी हुए विगत वैभव सोचते ही ॥६६॥

थे चन्द्रगुप्त नर-पुंगव, तेज धारी,
लोहा सदा यवन शंकित मानते थे।
यूनान वीर नत मस्तक हो यहाँ से,
ले प्राणदान अपने घर को गए थे ॥६७॥

कौटिल्य की अजय नीति छिपी हुई क्या,
थी दैव-शक्ति उसमें अति तीव्र मेधा।
साम्राज्य नन्द-कुल का रज में मिलाया,
भूपाल रंक-कुल के नर को बनाया ॥६८॥

मन्त्री महा मगध का अति शक्तिशाली,
ब्रह्मर्षि तुल्य रहता वन की कुटी में।
खा कंद मूल निज जीवन को बिताता,
था राज्य तंत्र चलता जिसके करों से ॥६९॥

साम्राज्य के सचिव को अब देखते हैं,
लेते सहस्र निज वेतन मास में हैं।
वे भोग में समय को अपने बिताते,
है देश की न उनको लवलेश चिन्ता ॥७०॥

एकान्त में नियम कौंसिल में बनाते,
चिन्ता न लेश जनकी करते कभी वे।
पाते नहीं बसन भोजन देश वासी,
प्रासाद वस्त्र-धन से उनके भरे हैं ॥७१॥

मन्त्री जहाँ चतुर हों, जन मूर्ख भारी,
पाखण्ड दंभ युत वे, विनयी सदा ये।
सद्धर्म नष्ट, अघ का तब बोल वाला,
होता, कभी न सुख शान्ति विराजती है ॥७२॥

राष्ट्रीयता न जन में कुछ दीखती है,
देशानुराग उनका मृत हो गया है।
वे स्वत्व को समझते अपने नहीं हैं,
मंत्री अतः स्व मन की करते यहाँ हैं ॥७३॥

नालन्द में ग्रहण थे करते स्वशिक्षा,
संसार के विविध छात्र सभी कला में।
विद्या प्रचार करते जग में सदा जो,
हा, ज्ञान शून्य उनके शिशु हो गये हैं ॥७४॥

है बौद्ध धर्म इससे सब ओर फैला,
सिद्धार्थ का धवल धाम यहीं कहीं है।
हिंसा विरुद्ध जिसने निज युद्ध ठाना,
दी सत्य-शक्ति जग को जयदा अहिंसा ॥७५॥

हा, रक्त का उदधि है बहता धरा में,
हिंसा प्रवाह पशु-सा सब के मनों में।
सौहार्द भाव जन से सब भाँति भूला,
संतान एक अखिलेश्वर की सभी हैं ॥७६॥

हिंसा समूल यदि है जग से मिटाना,
बन्धुत्व भाव भरना सब जातियों में।
है विश्व-युद्ध इसका न निदान जानो,
क्या वृक्ष भी गरल का फलता सुधा है ॥७७॥

प्रेमास्त्र को हृदय से अब धार लेना,
विद्वेष के विटप को पल में गिराना।
ले मूल मंत्र मन में महती दया का,
संहार विश्व जन का बस रोकना है ॥७८॥

बंगाल शस्य-गरिमा, अति सौम्यता को,
जा देखते नगर-ग्राम विभिन्नता को।
देखा जभी श्रमिक के दल को मिलों में,
अत्यन्त दुःख उनके उर में समाया ॥७६॥

वे अर्ध नग्न रहते, सहते क्षुधा को,
है कार्य में निरत ही दिन में निशा में।
हा, नित्य रक्त बनता उनका पसीना,
है नर्क तुल्य सब भाँति सदैव जीना ॥८०॥

बच्चे निरे बिलखते रहते घरों में,
खाना कभी समय से मिलता नहीं है।
वात्सल्य का मधुर भाव उन्हें मिला क्या,
माता-पिता सतत ही रहते मिलों में ॥८१॥

रोगादि-पीड़ित कुली मिल में न जाते,
होती न औषधि निरा मरते क्षुधा से।
होता न संग्रह अहो, धन का कभी भी,
पाते कहाँ अधिक हैं निज जीविका में ॥८२॥

लेते कभी ऋण तभी करते दवा हैं,
होते विवाह शुभ कार्य उधार से ही।
होते न मुक्त ऋण के गुरु भार से वे,
दे व्याज कोष भरते स्वमहाजनों के ॥८३॥

बापी बनी नगर में प्रति ग्राम में थी,
प्राणी अनेक उनमें सुख से नहाते।
नाली बहा मलिन वारि कहीं मिलाती,
उच्छिष्ट पात्र घर के धुलते वहीं थे ॥८४॥

होती अशुद्ध तट की जलवायु सारी,
थे भोगते इस लिए परिणाम वासी।
कीटाणु फैल कर नित्य मलेरिया के,
थे आयु क्षीण करते नर-नारियों की ॥८५॥

दुर्गन्ध मिश्रित हवा पथिकादिकों को,
थी रोकती कठिन था चलना वहाँ से,
गांधी गए निकट में उनकी दशा से,
मर्मान्त दुःख उनके उर में हुआ था ॥८६॥

काली, महा सुभग मन्दिर में उन्होंने,
देखा वहाँ रुधिर की सरिता बही थी।
प्राणी अबोध अज की बलि थे चढ़ाते,
गांधी हुए व्यथित देख जघन्य लीला ॥८७॥

प्यारी जिन्हें सतत थी मन में अहिंसा,
हिंसा अहर्निशि वही करते दिखाते।
सम्पूर्ण जीव जगदीश्वर के बनाये,
होगा प्रसन्न वह क्या वध से सुतों के ॥८८॥

हिंसा समूल मुझको अब है हटाना,
जो निन्द्य कर्म उनको जग से मिटाना।
भूली स्वदेश जन को महती 'अहिंसा,
सत्प्रेम-पाठ उनको फिर से पढ़ाना ॥८९॥

गांधी चले अवध में पहुँचे वहाँ से,
जो जन्म-भूमि रघुवंश महाबली की।
की बार-बार कवि ने जिनकी प्रशंसा,
अत्यन्त हर्ष उनको तब हो रहा था ॥९०॥

संकल्प, सत्य, बल राघव राम में था,
चिन्ता स्वदेश-हित की उनको सदा थी।
साम्राज्य-सौख्य क्षण में जन-हेतु छोड़ा,
रक्षा सगर्व नित की निज सभ्यता की ॥९१॥

हैं राम-भक्त कितने उनके गुणों से,
होते प्रभावित अभी रत धर्म में हैं।
हा, साधु वेश रखते पर कार्य में वे,
आमूल भक्त उस रावण पातकी के ॥९२॥

सम्पूर्ण आय-धन को सब मन्दिरों के,
वैराग्य मूर्ति खल साधु सदा उड़ाते।
राष्ट्रीय कार्य-हित में धन जो लगाते,
उत्थान देश जन का, कर मुक्ति पाते ॥९३॥

श्री कृष्ण धाम मथुरा पहुचे वहाँ से,
उल्लास पूर्ण उर मध्य भरा हुआ था।
सर्वत्र रम्य मुरली बजती वहाँ थी,
थे भूलते सकल दुःख समस्त वासी ॥६४॥

घी, दुग्ध और दधि को सब काल खाते,
था भव्य स्वास्थ्य उनका गिरि थे उठाते।
गीता प्रकाशक यहीं छवि था लुटाता,
दैत्यादि दुष्ट नर को रण में सुलाता ॥६५॥

तीर्थादि में, नगर में, प्रति ग्राम में जा,
देखा, भली विधि मिले सब प्राणियों से।
पंजाब में पहुँच सुन्दर भाग देखा,
आनन्द दुःख क्रम से उनको हुआ था ॥६६॥

गांधी-गवर्नर मिले जब अन्त में थे,
सिद्धान्त सर्व अपना उनसे बताया।
स्वाधीन देश फिर से जिस भाँति होगा,
लेंगे स्वराज्य, तप, संयम, वीरता से ॥६७॥

[शार्दूल विक्रीडित]

खोला आश्रम भव्य साबरमती, गांधी व्रती ने स्वयं,
प्रेमी हों जन सत्य, शील, समता आदर्श चारित्र्य के।
हो सत्याग्रह युद्ध के उचित हो, निर्माण सेना महा,
हो स्वाधीन तुरन्त देश अपना, श्वेतांग भूपेन्द्र से ॥६८॥

नवम सर्ग

सत्याग्रह की झलक

(चम्पारन)

हैं चम्पारन के किसान दुख में, कोई सहारा नहीं,
बोते नील परन्तु तीन कठिया, लेते जमीदार हैं।
भारी आर्थिक कष्ट है कृषक को, विज्ञात जैसे हुआ,
गांधी आश्रम छोड़ सत्वर चले, भूले नहीं दीन को ॥१॥

ज्यों चम्पारन में गए, मिल गया, कप्तान का पत्र त्यों,
जायें प्रांत तुरंत छोड़ उनसे, उत्पात होगा वहाँ।
होता क्या वह मान्य वीरनर को, सन्देश भेजा यही,
देखेंगे दुख दैन्य को स्वजन के, सद्भाव से, शांति से ॥२॥

जैसे ही निज कार्य में लग गए, बन्दी हुए अज्ञ से,
छोड़ा वाइसराय ने जब सुना, तत्काल ही जेल से।
आज्ञा प्राप्त हुई पुनः भ्रमण को, स्वच्छन्दता से करें,
देंगे योग स्वयं कलेक्टर उन्हें, ऐसे महादेश में ॥३॥

आते ही विजयी हुए, जन वहाँ, साश्चर्य थे देखते,
लज्जा से तब थे कलेक्टर तथा, कप्तान दुःखी महा ।
नेता के अति मान से कृषक में, जागा महा प्राण था,
बापू का गुण गान देश भर में, होने लगा वेग से ।।४।।

मिथ्यादंभ अतीव था विभव का, भूस्वामियों को सभी,
होंगे श्रीहत शीघ्र वे इस लिए, चिन्ता जगी चित्त में ।
गांधी के प्रतिकूल होकर सभी, क्लेशादि देने लगे,
नेता का मन और ही रम गया, सद्धर्म के मार्ग में ।।५।।

गांधी के प्रिय मालवीय तब थे, सन्नद्ध साहाय्य को,
नेता ने उनको लिखा हृदय से, देते बधाई महा ।
है आवश्यकता न अन्य जन की, सत्याग्रही को कमी,
ले सत्याग्रह अस्त्र को स्व कर में, होते जयी सर्वदा ।।६।।

खेतों के सब नील के कृषक के, स्वामी जमींदार थे,
कड़े विंशति नील की उपज में, लेते कठा तीन थे ।
खेती थे करते किसान तप से, पाते नहीं लाभ को,
रोगी दीन अनाथ हो सतत ही, दुःखादि को भोगते ।।७।।

ग्रामों में लख दैन्य को कृषक के, पीड़ा हुई तात को,
कच्चे या तृण के मकान सब थे, सम्पत्ति से शून्य जो ।
भूखे वे रहते न वस्त्र तन में, होता यथा योग्य था,
शिक्षा थी उन में न लेश भर भी पश्वादि से थे गिरे ।।८।।

आज्ञा थी निज तात को कृषक के, गाथा लिखें दुख की
ज्ञानी लेखक ले समस्त दुख को, सूची बनाने लगे ।
खोला आश्रम एक नव्य जिस से, सेवा भली भाँति हो,
आ, आ मार्मिक क्लेश ताप जनता, रो,रो लिखाने लगी।।९

नेत्रों से जलधार थी उमड़ती, सीमा न थी क्लेश की,
आँसू की सरिता अजस्र बहती, रोते सभी थे मिले।
पक्षी का कुल रो पड़ा रुदन से, काँपे तथा वृक्ष भी,
रोती थी निशि शीत-वारि-कण में, जाता नहीं था सहा॥१०॥

आना बन्द नहीं हुआ पुरुष का, नारी चलीं लाल ले,
दीनों का दल दीन-बन्धु-गृह में, आया सभी ओर से।
आये हैं भगवान पार करने, मानो महा नर्क से,
ऐसा ही मृदु भाव ले हृदय में, दौड़े दुखी लोग थे॥११॥

हो लाचार सदैव दुःख सहते, दण्डादि को झेलते,
अत्याचार अनेक घोर "निलहे," स्वामी जमींदार के।
प्राणी थे कहते उसास भरते, निष्प्राण होते कभी,
मानो था उस काल शीत जल से, ज्वालामुखी हो फटा॥१२॥

गाथा थी बढ़ती नवीन नित ही, सीमा न थी अन्त की,
आती थी जनता सबेग, नदियाँ, जैसे महा सिन्धु में।
जाती थी रुक लेखनी सहज ही, आँसू भरे नेत्र से,
जाते भूल स्वकर्म लेखक सभी, प्राणी दुखी देखते॥१३॥

जाता कागज भीग नेत्र जल से, लेते उठा दूसरा,
भारी धैर्य सँभाल शीघ्र लिखते, वे थे व्यथा दीन की।
जाती थी फिर लेखनी गिर कभी, मर्मान्त उल्लेख से,
रोता था मन ही स्वयं जिस घड़ी, होता भला कार्य क्या॥१४॥

एवं साहस पूर्ण कार्य करते, प्यारे महा शूर थे,
श्री राजेन्द्र प्रसाद भी सुरत थे, ऐसे महा यज्ञ में।
सारी आय भुला वहीं अवध की, सेवा मनोयोग से,
गांधी जी अति मुग्ध थे मिल गया, न्यारा बिहारी सखा॥१५

थे ग्रामीण किसान अज्ञ उन में, थी स्वच्छता भी नहीं,
गांधी ने इस ओर भी बस किया, सत्कार्य आरम्भ था।
शिक्षा वे फिर रात्रि में दलित को, देने दिलाने लगे,
ऐसे मानवता अनूप उन में, उद्योग ऐसा किया ।।१६।।
पूरा लक्ष्य न हो रहा तुरत था, वर्षों वहाँ कार्य था,
गांधी ने फिर देवदास सुत को, 'बा' को बुला भी लिया।
आनन्दी, मणि, आदि अन्य बहनें आई बनीं सेविका,
शिक्षा सुन्दर दिव्यता स्वजन में, घी से बढ़ाने लगीं ।।१७

[द्रुतविलम्बित]

समय था मिलता जब कार्य से,
भ्रमण थे करते जन-मध्य में।
सदल आतुर मोहन दास जी,
मलिनता हरते वर ज्ञान दे ।।१८।।

मुदित 'बा' करतीं शुभ कार्य को,
अथक ही पति के सँग में सदा।
तब मनो वर भिक्षु सुभिक्षुणी,
विचरते उपदेश निमित्त थे ।।१६।।

पतित-पावन, 'बा' निज संग में,
जब गये कुछ ग्राम समाज में।
स्वजन आतुर दर्शन के लिए,
चल पड़े गृह से तब मुग्ध हो ।।२०।।

मृदुल भाषण वे करते जभी,
विकलता पल में हरते तभी।
विहँसते लख मानस-कंज ये,
सहज में खिलते जन-यूथ के ।।२१।।

नयन राजित थे इस भाँति ही,
सकल खञ्जन लज्जित हो गए।
वर निशाकर को अवलोकते,
तब चकोर मनो अति चाव से।।२२।।

तरखि-जीवन में बहु भार ले,
अति अधीर यही जन चाहते।
चतुर नाविक के सहयोग से,
दुख-नदीश तरें पल मात्र में ।।२३।।

नयन अम्बु गिरे इतने वहाँ
अगम सागर निर्मित हो गया।
सकल दुःख बहे जन वर्ग के,
अतुल हर्षित विस्मित थे सभी ।।२४।।

परम पावन रम्य विचार ही,
हरख थे करते मल चित्त के।
हृदय मंदिर से तम-कालिमा,
द्रुत मिटी उपदेश प्रकाश से ।।२५।।

विमल भक्ति समन्वित नारियाँ,
ग्रहण थीं करती जब ज्ञान को।
मलिन अम्बर था उनका महा,
चतुर-नेत्र गए उस ओर को ।।२६।।

अधिक खेद हुआ निज तात को,
फिर कहा समझा कर दार को।
तुम उठो इनको वर बुद्धि दो,
धवल वस्त्र सदा पहना करें ।।२७।।

बहुत खिन्न हुईं सब नारियाँ,
सुन लिया जब तीव्र कटाक्ष को।
निकट 'बा' तब एक गयी स्वयं,
विनय से नत-मस्तक हो वहाँ ॥२८॥

वह उन्हें गृह को निज ले गई,
फिर दिखा कर भीतर गेह के।
विपुल अश्रु गिरा कहने लगी,
नयन से निरखो अति दीनता ॥२६॥

कुछ छिपा तुम से अब है नहीं,
बसन अन्न नहीं घर में यहाँ।
धवल वस्त्र रहे किस भाँति ही,
बदन में बस एक यही पड़ा ॥३०॥

जनक से कह दो समझा बुझा,
निपट अज्ञ नहीं सब नारियाँ।
अतुल है अति आर्थिक दीनता,
मलिनता रुचती न नितान्त है ॥३१॥

अब निवेदन है तुम से यही,
अति दया कर दो नव धोतियाँ।
मलिन वे हमको यदि देख लें,
कथन हो सकता तब सत्य है ॥३२॥

अति अचम्भित थीं लख दीनता,
व्यथित 'बा' मन में निज हो गईं।
नयन से गिरता बहु अश्रु था,
अहह, था जननी-मन रो रहा ॥३३॥

गृह बना तृण का अति जीर्ण था,
जल न था रुकता जल-पात में।
गगन के बहु तारक, चन्द्र भी,
अहह, थे दिखते उन छिद्र से ।।३४।।

करुण दृश्य निहार दुखी हुईं,
बदन से कहने फिर 'बा' लगीं।
"तुम न सोच करो, न अधीर हो,
समय में परिवर्तन हो रहा" ।।३५।।

बहुत धैर्य बँधा उस दीन को,
विकल मेह गयीं फिर 'बा' अहा।
स्वपति से करुणायुत दुःख को,
जब कहा, परिताप हुआ उन्हें ।।३६।।

तुरत खद्दर निर्मित वस्त्र को,
बदन के प्रति भेज दिया, वहाँ।
बहुत हर्ष हुआ मन में उसे,
धवल वस्त्र मिला नव भेंट में ।।३७।।

इधर मास समाप्त हुए कई,
पर न अन्त हुआ उस कार्य का।
नित अनन्त विषादमयी कथा,
जन लिखा कर पीड़ित लौटते ।।३८।।

समिति एक बनी सरकार से,
तुरत जाँच करे वह भी व्यथा।
प्रवर मोहन भी उस में रहे,
सहज में वह कार्य समाप्त हो ।।३९।।

फल गया जब निश्चित जाँच का,
त्वरित दाग मिटा सब नील का।
नियम टूट गया शत वर्ष का,
सकल स्वत्व मिला स्व किसान को ॥४०॥

कृषक-कंज खिले रवि-स्वत्व से,
कुमुद-भूप हत-प्रभ हो गये।
तम-अधर्म हटा उस भाग से,
यश-पराग सभी दिशि में भरा ॥४१॥

विजय की अति धूम मची वहाँ,
मुदित हो जय थे जन बोलते।
गगन गूँज गया सब ओर से,
तरुण-बाल-समाज-निनाद से ॥४२॥

सुमन-वृष्टि हुई उस भाग में,
मुदित मोहन शोभित थे जहाँ।
कुसुम-हार मनोहर कण्ठ में,
सकल भक्ति दिखा पहना रहे ॥४३॥

युवक, बालक, वृद्ध जमा हुए,
परम दर्शन के नर-देव के।
नव सजा कर, ले कर आरती,
अधिक हर्ष समन्वित हो रहे ॥४४॥

समझते कुसुमाकर थे उन्हें,
कुछ यही समझे सुर राज हैं।
कुछ गणेश, जनेश, महेश ही,
समझते कुछ मोहन थे उन्हें ॥४५॥

सहज 'वा' सँग मोहन दास थे,
अति सुशोभित तत्क्षण हो रहे।
तब मनो अवधेश सजानकी,
परम रंजित थे करते सभी ॥४६॥

चरण का रज ले कर वृन्द थे,
कृषक भाग्य अनूप सराहते।
सब यही कहते, 'प्रभु धन्य हैं,
स्वजन-पालक, बन्धु अनाथ के ॥४७॥

दुख-दरिद्र मिटा सब भाँति है,
अतुल गौरव आज हमें मिला।
सहज स्वत्व मिला सविशेष है,
सतत धन्य तुम्हें बहु बार है' ॥४८॥

वह छटा कमनीय अनूप थी,
कथन हो सकता कवि से नहीं।
यदि गणेश लिखें निज बुद्धि से,
सफल वर्णन हो सकता तभी ॥४६॥

विपुल हर्ष विलोक किसान का,
मन तरंगित था नरसिंह का।
विजय पा कर मानव मात्र में,
परम हर्ष हुआ किसको नहीं ॥५०॥

विनय संयुत मोहन दास ने,
प्रकट की करबद्ध कृतज्ञता।
फिर कहा, "नव शक्ति मिली तुम्हें,
मिल गये जब आपस में सभी ॥५१॥

मिल परस्पर भारत के सभी,
कृषक ले सकते निज राज्य को।
चरम शक्ति छिपी उर-बाहु में,
शयन में अति लीन किसान हैं ॥५२॥

सफल लक्ष्य हुआ जब शीघ्र ही,
सदल मोहन आश्रम को गए।
फिर स्वराज्य निमित्त विवेक से,
विविध कार्य लगे करने वहाँ ॥५३॥

———

दशम् सर्ग

खेड़ा सत्याग्रह (सविनय अवज्ञा)

(इन्द्र वंश)

खेड़ा निवासी असमर्थ हो गए,
दुष्काल ऐसा सब ओर व्याप्त था।
बोया गया जो कुछ बीज खेत में,
पैदा हुआ क्या कृषि में छटाँक भी ॥१॥

होने लगे ग्रास कराल काल के,
प्राणी जले हा! जठराग्नि ज्वाल में।
हा! घास पत्तों पर जीविका रही,
रक्षा लगे वे करने कुटुम्ब की ॥२॥

गो, बैल के भी तन क्षीण हो गए,
कंकाल ही था उनका दिखा रहा।
सर्वत्र चिंता सब को यही रही,
हो त्राण कैसे उस घोर कष्ट से ॥३॥

छाया महा संकट और भी वहाँ,
देना पड़ा ज्यों सबको लगान था।
लाले पड़े थे जब प्राण के, अहो,
देते कहाँ से 'कर' को किसान भी ॥४॥

जो दे न पाते कर को नितान्त थे,
जाते बिठाये अति चंड धूप में।
यों प्राप्त होता धन था नहीं पुनः,
होते खड़े वे नत-शीश ताप में ॥५॥

कुर्की कराते पशु, धान्य छीनते,
लेते जमींदार लगान अन्त में।
सारे निवासी दुख भोगने लगे,
आतंक छाया सहसा किसान में ॥६॥

प्यारे निराधार लगे पुकारने,
गांधी सुधी के सम दीन-बन्धु को।
तत्काल दौड़े उनको सँभालने,
गांधी न बैठे फिर शांति से रहे ॥७॥

न्यारी सभा की, जिसमें पटेल भी,
निव्याज्य आए अति आय को भुला।
गांधी व्रती ने मन में किसान के,
सद्भाव ऐसा पल में जगा दिया ॥८॥

"संकल्प ऐसा कर लो यहाँ सभी,
देंगे न पैसा 'कर' में भविष्य में।
मानी धनी भी सहयोग दें तथा,
वे भी नहीं दें अपने लगान को ॥९॥

शैलेश के तुल्य कठोर हों सभी,
हैं कौन जो आँख दिखा सके तुम्हें ।
आबद्ध होंगे जब ऐक्य सूत्र में,
उन्मुक्त होंगे 'कर' से तुरन्त ही" ॥१०॥

उत्साह जागा सब में अपार था,
सारी सभा ने फिर एक हो कहा ।
"आतंक से हार कभी लगान को
देंगे नहीं घोर विपत्ति भी पड़े" ॥११॥

संतुष्ट गांधी शुभ लक्ष्य से हुए,
प्रस्ताव भेजा सरकार को तभी ।
"हैं अर्थ से हीन किसान दुःख में,
दुष्काल छाया, 'कर' हो क्षमा अभी ॥१२॥

या जो धनी हों 'कर' को जमा करें,
प्यारे महा दीन किसान मुक्त हों ।
प्रस्ताव स्वीकार हुआ न, एक भी,
देंगे न कोई 'कर' राज्य को यहाँ" ॥१३॥

प्रस्ताव जैसे पहुँचा लगान का,
क्रोधाग्नि जागी सरकार की तभी ।
अन्याय होने तब ग्राम में लगे,
गांधी व्रती ने समझा कहा उन्हें ॥१४॥

"मित्रो! सहो, दण्ड अतीव धैर्य से,
हिंसा न हो लेश स्वधर्म वीर से ।
कुर्की करें धान्य-विहीन गेह हो,
हो मौन, कोई कुछ भी कहो नहीं ॥१५॥

बन्दी बनाएँ यदि, जेल में चलो,
शंका न लाओ तिल भी स्वलक्ष्य में।
सत्याग्रही पूर्ण विनीत नम्र हो,
सानन्द सारे दुख झेलते सदा ॥१६॥

संलक्ष्य भूलो न कदापि स्वप्न में,
आगे बढ़ोगे मन में विचार लो।
अन्याय होंगे सब ध्वस्त शीघ्र ही,
सद्धर्म होता विजयी त्रिकाल में" ॥१७॥

आतंक छाया अति गाँव-गाँव में,
दुर्नीति में ही पिसते गए सभी।
पीटे गए, मानव, दैन्य-यूथ से,
बंदी बनाए जन जेल में गए ॥१८॥

सामान लूटे घर से गए वहाँ,
नीलाम होने क्षण में लगे, अरे!
कोई न लेता जन-वस्तु को कभी,
आश्चर्य होता अरि को अपार था ॥१६॥

कांजी घरों को पशु भेजते तथा,
नीलाम होते कुछ काल में वहाँ।
कोई न लेता उनको अमूल्य भी,
एका जगी थी उनमें अपूर्व ही ॥२०॥

लाचार हो ढोर सभी निकालते,
कांजी घरों से अरि हार मानते।
खेड़ा निवासी निज बैल आदि को,
तत्काल लाते मन में प्रसन्न हो ॥२१॥

सामर्थ्य शाली 'कर' से विरक्त हो,
देते नहीं थे दुख झेलते तथा।
था ऐक्य ऐश्वर्य-निधान-रंक में,
जो देखते थे उर में सराहते ॥२२॥

गांधी प्रभा से सब दीप्तिमान थे,
आया महा तेज गिरे मनुष्य में।
जो काँपते थे चपरास देखते,
वे भी नहीं थे डरते नरेश से ॥२३॥

आश्चर्य कोई इसमें न जानिए,
सत्संग का ही इतना प्रभाव है।
आकाश में शोभित हो विराजती,
पैरों तले की रज वायु-संग में ॥२४॥

सत्संग मिश्री करता कुवंश है,
पाता सदा मूल्य समान आप भी।
प्रासाद में भी कर संग पान का,
जाता महा तुच्छ पलास-पत्र है ॥२५॥

है एकता में वह शक्ति राजती,
जो है हराती अति शक्तिमान को।
क्या सूत्र के निर्मित जाल से कभी,
बाँधा नहीं जा सकता गजारि है ॥२६॥

क्या धर्म में शक्ति नहीं अटूट है,
दुर्नीति हारी कब धर्म से नहीं।
प्रह्लाद जीता निज धर्म-युद्ध में,
हारा नहीं क्या उसका कृतांत है ?॥२७॥

गांधी महात्मा-बल से किसान वे,
जीते भली भाँति हरा स्वशत्रु को।
देखा सभी ने वह युद्ध मुग्ध हो,
सन्मार्ग-गामी किस भाँति जीतते ॥२८॥

गांधी सुधी को सरकार का मिला,
शीघ्राति ही पत्र विराम के लिए,
थी शक्ति हारी उसकी अजेय भी,
सत्याग्रही की जय हो गई तथा ॥२६॥

आदेश ऐसा उस पत्र में रहा,
"सम्पन्न स्वेच्छा-वश दें लगान को।
जो दीन हैं शेष किसान दुःख में,
वे मुक्त होते 'कर' से तुरन्त हैं ॥३०॥

प्रस्ताव में था पहले लिखा गया,
जैसा, उसी की शुभ पूर्ति थी हुई।
गांधी सुधी ने फिर धन्यवाद दे,
संदेश स्वीकार किया सहर्ष ही ॥३१॥

तत्काल बंदी-गृह से प्रसन्न हो,
आए सभी दीन किसान गेह को।
छाया महा हर्ष समस्त ग्राम में,
बापू-प्रशंसा करने लगे सभी ॥३२॥

गांधी सुधी की जय बोलते हुए,
उत्फुल्ल होता हृदयारविन्द था।
पुष्पादि से निर्मित शुभ्र हार ले,
सानन्द पूजा करने लगे सभी ॥३३॥

सन्तुष्ट देखा सब को प्रसन्न हो,
गांधी सुधी ने मृदु भाव से कहा।
"मित्रो ! जयी हो नित कर्म क्षेत्र में,
आत्मावलम्बी यदि शीघ्र ही बनो ॥३४॥

न्यारी अहिंसा व्रत धार लो सभी,
यों दासता के दुख दूर हों अभी।
अन्याय को देख डरो कभी नहीं,
संघर्ष पूरा उससे करो सदा ॥३५॥

साफल्य जैसे इस कार्य में मिला,
होंगे इसी भाँति जयी भविष्य में।
विश्वास रक्खो प्रभु के विधान में,
होगा यहाँ शीघ्र स्वराज्य सर्वथा ॥३६॥

हो आत्म-विश्वास समस्त कर्म में,
दुस्साध्य है कार्य नहीं तुम्हें कभी।
एकाग्रता हो निज लक्ष्य में सदा,
सारांश में है उपदेश शास्त्र का ॥३७॥

भूलो नहीं पाठ दिया गया तुम्हें,
सम्मान का भाव बना रहे तथा।
स्वातंत्र्य का युद्ध छिड़े जभी, तभी,
साहाय्य देना तन-चित्त-अर्थ से" ॥३८॥

(शार्दूल विक्रीड़ित)

गांधी जी इस भाँति ही स्वजन को, आत्मावलम्बी बना,
देते थे उपदेश सत्य, तप का, सद्भावना, प्रेम का।
हो कैसे निज देश मुक्त फिर से, आधीनता जाल से,
आठो याम इसी अपार दुख में, विश्राम लेते न थे ॥३९॥

एकादश सर्ग

(बारडोली सत्याग्रह)

असहयोग की तैयारी

(बसंत तिलका)

"अंग्रेज न्यून बसते इस देश में हैं,
सम्पूर्ण राज्य सुख वैभव भोगते हैं।
सम्मान से रहित भारत के निवासी,
होते कृतज्ञ उनके, करते गुलामी ।।१।।

गांधी विचार करते अति खिन्न होते,
दें राज्य को न सहयोग स्वदेश वासी।
साम्राज्य का सहज में बस अंत होगा,
होगा स्वराज्य पल में रण के बिना ही ।।२।।

ब्रह्मास्त्र-सा असहयोग नया निकाला,
छाया प्रभाव जिसका सब प्राणियों में।
वैरी अचम्भित हुए उसकी प्रभा से,
जागे, किसान बल-संयुत हो विभा से ।।३।।

नाना लगान, कर पीड़ित नरकौली,
अत्यन्त घोर ऋण से दब सा गया था।
देखा महापुरुष ने जब दीनता को,
ले संग बल्लभ पटेल गए वहाँ वे ।।४।।

नैराश्य-दीर्घ नद में जन डूबते थे,
देखा वहाँ कुशल नाविक आ गया है।
सारी व्यथा नयन के जल से सुनाई,
आबाल, वृद्ध, जन तत्क्षण रो रहे थे ।।५।।

नेत्राम्बु से जलन को जन की मिटाया,
दुःखान्त दृश्य करुणाकर ने विलोका।
आदेश शीघ्र अपना उनको सुनाया,
सोये हुए हृदय में बल को जगाया ।।६।।

"देना लगान सब बन्द करो अभी से,
अन्याय को सहन ही करना बुरा है।
अत्यन्त कष्ट सहना, कर को न देना,
वीरो, सहर्ष अपना गत राज्य लेना ।।७।।

हिंसा न हो, न चिर-सत्य कभी भुलाना,
जो कष्ट हो, समुद ही सब झेल लेना।
पीछे हटे वचन से, फिर नाश जानो,
राखा प्रताप-ध्रुव-सा प्रण आज ठानो।।८।।

उत्साह तीव्र मन में सब भाँति जागा,
आतंक-भाव उर से अति शीघ्र भागा।
ऐसा कहा सकल ने सँग में मरेंगे,
स्वाधीन देश अपना पल में करेंगे ।।९।।

बापू, नहीं वचन से अपने हटेंगे,
हो घोर कष्ट तन को, सहसा सहेंगे।
संवाद शीघ्र सरकार समीप भेजो,
देंगे लगान अब से न समस्त बासो ॥१०॥

गांधी महा मुदित थे इस भावना से,
आशा बँधी पृथक वे प्रण से न होंगे।
चेतावनी तुरत ही सरकार को दी,
"देगा लगान न कभी अब बारडोली" ॥११॥

क्रोधाग्नि उग्र भड़की इस सूचना से,
तत्काल उत्तर वहाँ इस भाँति आया।
सोचो पुनः जटिलता इससे बढ़ेगी,
अत्यन्त शीघ्र 'कर' को सब ही चुका दो ॥१२॥

सोते हुए मृग-विनायक को जगाते,
ले शक्ति क्षीण तुम वारिधि को थहाते।
शैलेश भी उखड़ क्या सकता करों से,
मार्तण्ड को पहुँच क्या सकते पदों से ॥१३॥

क्रोधाग्नि की लपट से सहसा बचाओ,
क्या है अभीष्ट जलना जलती शिखा में।
होगा जभी दमन तो मिट ही रहोगे,
कानून के अगम सागर में बहोगे ॥१४॥

कल्याण शुभ्र अपना मन में विचारो,
आता समीरण महा, जन को उबारो।
है दूर सिंह अब भी कर लो सुरक्षा,
टालो विपत्ति, सब लेकर प्राण-भिक्षा ॥१५॥

नागादि से गरुण भी डरता कभी है,
नागादि देख हरि भी भगता कहीं है।
दावाग्नि को बन महा कुछ भी नहीं है,
यज्ञाग्नि को हवि बुझा सकता नहीं है ॥१६॥

ब्रह्मास्त्र-ले असहयोग प्रभावकारी,
स्वाधीनता-समर में जनता डटी थी।
बातें स्व-शत्रु-दल की रुचती उसे क्या,
आवेश पूर्ण वह थी डरती भला क्या ॥१७॥

मोर्चा बना समर का द्रुत बारडोली,
ऐसा अनूप रण भी न कभी हुआ था।
था धर्म युद्ध उस काल छिड़ा निराला,
अन्याय घोर सहते इस भाँति प्राणी ॥१८॥

पीटे गए कृषक, निर्भय लाठियों से,
पैसा तथापि 'कर' में न दिया उन्होंने।
नीलाम धेनु, धन, बैल हुए सभी थे,
आश्चर्य, ग्राहक न थे उन वस्तुओं के ॥१६॥

अत्यन्त ही कंपित थे तब कर्मचारी,
नीलाम तत्क्षण किया गृह को उन्होंने।
सारे किसान निकले सुद से पथों में,
आबाल, वृद्ध महिला सब संग में थे ॥२०॥

श्री राम, लच्मण तथा बहु जानकी से,
सन्मार्ग में विचरते जन शोभते थे।
थी शान्ति दिव्य सुख मण्डल में दिखाती,
देखी अनूप सुषमा सब ने निराली ॥२१॥

घने पड़े गृह सभी उस गाँव के थे,
था एक ग्राहक नहीं उनका कहीं भी।
संपूर्ण संगठित थे जन ग्राम वासी,
सद्भाव ऐक्य उस भाँति गया न देखा ।।२२।।

भोले अबोध शिशु भी गृह में न जाते,
देखे गए ध्रुव समान अनेक बच्चे ।
कोई कहीं लव तथा कुश-सा दिखाता,
माता उदार जिनकी दुख भोगती थीं ।।२३।।

था शून्य ग्राम जन से, उनमें दिखाते,
आतंक कारण वहाँ बस कर्मचारी ।
होता कहीं बस कभी भ्रम भूत का था,
श्वेतांग व्यक्ति उसमें यदि था दिखाता ।२४।

छीने गए विविध स्वत्व किसान से थे,
लाचार वे बहुत भाँति किये गये थे ।
निःशुल्क खेत मिलते उस काल में थे,
कोई किसान उनके न समीप जाता ।।२५।।

गेहूँ, कपास, उगती जिन खेत में थी,
काँटे कराल, तृण ही उनमें उगे थे ।
जो शस्य पूरित कभी सुषमा दिखाते,
तत्काल शूल सम वे दुख दे रहे थे ।।२६।।

भूभाग शून्य लगता उस काल में था,
कैसी विचित्र गति है जगदीश की भी ।
था स्वर्ण ही बरसता जिन खेत में, वे,
वीरान हो, मरुबने, परती पड़े थे ।।२७।।

एकान्त में सुभग ग्राम नया बसा था,
मानों पवित्र मुनि आश्रम था निराला।
प्यारे किसान ऋषि तुल्य दिखा रहे थे,
स्वातंत्र्य हेतु तप साधन में लगे थे ॥२८॥

सेना पड़ी अजय राघव राम की थी,
गांधी महा-व्रती के जन या दिखाते।
सौमित्र वीर अति धीर वहाँ डटे थे,
योद्धा पटेल सरदार कहीं अड़े थे ॥२६॥

अत्यन्त दुःख सुख से सहते सभी थे,
जाड़ा, निदाघ, अति वृष्टि समान थी थे,
आधा कभी उदर भी भरता नहीं था,
उत्साह नित्य पर नूतन हो दिखाता ॥३०॥

भोगा महा दमन को शम से उन्होंने,
कैसा अपूर्व तप धैर्य दिखा रहे थे।
उल्लेख हो न सकता जन-आपदा का,
भोगे अमानुषिक दण्ड नितान्त प्यारे ॥३१॥

बन्दी हुए, सुर पुरी, कितने सिधारे,
सिद्धान्त प्राण प्रिय ही उनको सदा था।
जो देवियाँ सहन शक्ति दिखा रही थीं,
वे न्यून थीं न तिल भी दिवि देवियों से ॥३२॥

प्राणी नहीं विचलते निज आन से थे,
गम्भीरता अचल-सी उनमें समाई।
आई सभी चरण में वह शक्ति भारी,
निस्तेज रावण हुआ जिससे कभी था ॥३३॥

ऐसा अनूप इतिहास कहीं मिलेगा,
खोजो सभी भुवन में बहु धीरता से।
मित्रो पुनः तुम यहाँ इतना कहोगे,
है धन्य-धन्य वह भारत बारदोली ॥३४॥

साश्चर्य विश्व वह नाटक देखता था,
जो भारतीय सुकलाविद खेलता था।
दातों तले भुवन ने उँगली दवाई,
छाई महा पुरुष की जग में दुहाई ॥३५॥

सत्याग्रही स्वपथ में ध्रुव-से अड़े थे,
अंग्रेज थे चकित देख अपार लीला।
गांधी महा मुदित थे लख धीरता को,
तल्लीनता, अटलता, वर वीरता को ॥३६॥

प्यारे पटेल उनके हित में लगे थे,
संग्राम को सतत ही क्रम से बढ़ाते।
योगीश ने कुशलता उनमें निराली,
देखी, तुरन्त 'सरदार' उन्हें बनाया ॥३७॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

गांधी ने दृढ़ शक्ति देख जन की, सोचा तभी चित्त में,
दूँ सामूहिक रूप शीघ्र इसका, संपूर्ण ही देश में।
भेजा वाइसराय को लिख पुनः, उद्देश्य तत्काल ही,
ऐसा हो न सका परन्तु विधि से, होना रहा जो, हुआ ॥३८॥

[शिखरिणी]

तभी चौरीचौरा, पर पुलिस हत्या कुछ हुई,
जलाया थाना को सब नर बने हिंसक वहाँ।
विचारा गांधी ने, जब तक गिरा देश इतना,
भलाई क्या होगी, तब तक अहिंसा-समर से ॥३९॥

अतः रोका न्यारा, उस समय सत्याग्रह छिड़ा,
नहीं हिंसा ही को, कर, जन उसे दूषित करें।
अहिंसा का नारा, सब दिशि लगाने लग गए,
बनें सत्याचारी, जन-जन यहाँ देश भर के ॥४०॥

[वसंत तिलका]

आदेश पा चकित था तब वार दोली,
पूरा हुआ न उसका प्रण था निराला।
था दुःख भक्त जन को इसका सदा ही,
रोका महा पुरुष ने उनको भला क्यों ॥४१॥

———

द्वादश सर्ग

(दाण्डी-यात्रा)

इन्द्रवंश

बैठे हुए आश्रम में निमग्न हो,
थे धीर गांधी मन में विचारते।
"स्वाधीन होगा कब शुभ्र देश, हा!
होगी व्यवस्था सुख शान्ति की यहाँ ॥१॥

है दैन्य छाया नर मध्य कोटिशः
कोई नहीं है सुख में दिखा रहा।
हैं डूबते दुःख-समुद्र में सभी,
औदुम्बरी के फल तुल्य सौख्य है ॥२॥

स्वार्थी विदेशी सरकार नित्य ही,
लेजा रही है धन मातृ-भूमि से।
आघातकारी कटुनीति का पता,
होता नहीं है जन को यहाँ कभी ॥३॥

स्वाधीनता है तिल मात्र भी नहीं,
है स्वत्व छाया सब में नरेश का।
हा, ख़ार में भी 'कर' है लगा हुआ
कोई बना क्या सकता उसे कभी ।।४।।

सीमा नहीं है अब दैन्य भाव की,
निर्जीव-सा जीवन हैं बिता रहे।
कर्मण्यता का बस अंत हो गया,
स्वच्छन्दता है सब भाँति ही छिनी ।।५।।

होता नहीं है अब सह्य लेश भी,
जो व्याप्त आतंक यहाँ नरेश का।
कानून काले चल जो रहे, अहो,
देना उन्हें है अब शीघ्र ही मिटा" ।।६।।

संकल्प ऐसा मन में किया जभी,
दुर्भाग्य जागा नृप आर्ज का तभी।
मानों किया था प्रण राम ने महा,
मिथ्याघनी रावण के विनाश का ।।७।।

दैत्येश या कंस विनाश के लिए,
आरूढ़ थे कृष्ण सकोप सर्वथा।
या थी चढ़ाई नरसिंह की वहाँ,
प्रह्लाद रक्षार्थ तुरंत हो रही ।।८।।

शैलेश द्रोणाचल को उखाड़ने,
मानों बढ़े थे हनुमान केसरी।
मानो धरा को तब शेष शीश से,
जाते गिराने सहसा-सरोष थे ।।९।।

आह्वान सारे जन को किया तभी,
स्वाधीनता को कटिबद्ध हों सभी।
"जाओ बनाओ सब ठार मोद से,
तत्काल तोड़ो अरि के विधान को ॥१०॥

मैं जा रहा हूँ कुछ वीर साथ ले,
वारीश के तीर विधान तोड़ने।
दण्डी बनेगा नव क्षेत्र युद्ध का,
होगा महा देश तुरंत मुक्त भी ॥११॥

स्वाधीनता ले जग में स्वदेश की,
मैं शान्त हूँगा-अथवा भविष्य को।
हूँ त्यागता आश्रम आज से, यहाँ,
आजन्म भी आ सकता कभी नहीं" ॥१२॥

संग्राम की सत्वर दुन्दुभी बजी,
मानो बजा भीषण पांचजन्य था।
सेना बढ़ी पांडव की सवेग या,
उद्दण्ड दुर्योधन के विनाश को ॥१३॥

सुग्रीव सेना बहु सज्ज हो चली,
जानो तभी अंगद जामवन्त से।
नीलादि योद्धा हनुमान से बली,
सर्वत्र सेनापति थे दिखा रहे ॥१४॥

मानों चमू भीषण वेग से बढ़ी,
थी दानवों को दलने त्रलोक में।
दुर्गा दिखाती अति क्रुद्ध थीं वहाँ,
काली, कृपाणी रण चंडिका चलीं ॥१५॥

गांधी महा आश्रम छोड़ शीघ्र ही,
दण्डी चले लेकर मित्र साथ में।
सत्याग्रही वीर चले पुनः वहाँ,
दिग्पाल क्या हैं उनके समक्ष में ॥१६॥

वारीश से आश्रम एक हो गया,
रेखा खिंची थी जन की विचित्र ही।
स्वर्गीय मानो सरिता-प्रवाह था,
माला बनी थी रमणीय जानिए ॥१७॥

निस्सीम सेना लख चौंक-से गए,
दिग्पाल थे कंपित भीति से महा।
होगा अरे, क्या जगदीश विश्व में,
भूखण्ड क्या खण्डित होन जायगा ॥१८॥

संत्रस्त थे शेष सहस्र शीश से,
भूचाल आये सहसा न भार से।
मोटा महा कच्छप पृष्ठ भी दबा,
हो कोल भी पीड़ित काँखने लगा ॥१९॥

छाई दिशा में रज घोर वेग से,
देते दिखाई न कदापि सूर्य थे।
घोड़े रुके थे रथ के दिनेश के,
वे मार्ग को खोज सके न धूल में ॥२०॥

अत्यन्त आश्चर्यित भानु देखने,
नीचे लगे, क्या पल में हुआ अरे।
गांधी चमू को लख मुग्ध हो गए,
देखा नहीं था वह रूप आदि से ॥२१॥

पक्षी उड़े, जा झट पेड़ में छिपे,
आँधी चली है यह मान चित्त में।
जाना इन्होंने न यथार्थ में, अहो,
गांधी सुधी का बढ़ता समाज था ॥२२॥

बारिश भी स्तम्भित हो गया तभी,
देखा महा मानव आ रहा वहाँ।
आया उसे ध्यान अतीत काल का,
क्या अंत होगा उसका क्षणेक में ॥२३॥

सोचा अरे, था पल में अगस्त्य ने,
दी प्राण भिक्षा बस अंत में कहीं।
आता महायूथ चला सवेग है,
दुर्दैव ने क्या अब भाल में लिखा ॥२४॥

सम्पूर्ण थे कम्पित जीव सिन्धु के,
होगा अभी नाश समस्त वर्ग का।
क्या सृष्टि का अंत समीप आ गया,
ऐसा सभी आकुल सोचने लगे ॥२५॥

ऐसी समस्या उस काल आ पड़ी,
त्रेतावतारी जब राम ने कहा।
"सौमित्र ले लो खर तीर हाथ में,
पाथोधि को शुष्क करो अभी-अभी" ॥२६॥

उत्पात भारी जग में मचा तभी,
जाना जिन्होंने सब ढंग हो गये।
दण्डी किनारे पहुँचे थुरीश ज्यों,
आँधी पुनः शान्ति हुई त्रिलोक में ॥२७॥

दो देश में किन्तु न शान्ति आ सकी,
श्री मातृ-भू में, इँगलैंड में तथा।
था राज्य पाने निज एक जा रहा,
खोने तथा अन्य सुराज्य जा रहा ॥२८॥

थी हर्ष की धूम मची स्वदेश में,
छाई घनी थी विपदा विदेश में।
थे कार्य आरूढ़ यहाँ सभी तथा;
वे घोर चिन्ता कुल थे विमूढ़ हो ॥२९॥

ले पात्र को, सत्वर अग्नि को जला,
गाँधी बनाने शुभ क्षार को लगे।
मानो बनाने अवलेह को वहाँ,
था जा रहा वैद्य समाज के लिए ॥३०॥

काँदू मिठाई तब था बना रहा,
मानो वहाँ व्यक्ति अनेक के लिए।
आस्वाद से हों अति मुग्ध सर्वदा,
राजा प्रजा को सुख हो समान ही ॥३१॥

उत्तप्त वेगानल था जला यहाँ,
प्राणी जले थे इँगलैंड के वहाँ।
वारीश का वारि बुझा सका नहीं,
देखा गया कौतुक एक था नया ॥३२॥

ज्यों ही लगी अग्नि समुद्र तीर में,
देशानुरागी जन तीव्र हो उठे।
ले ले कड़ाही, जल, अग्नि, रेह को
प्राणी बनाने सब क्षार को लगे ॥३३॥

ज्वाला जली एक प्रदेश में, अहा,
छाया उजाला सब मातृ भूमि में।
स्वाधीनता का वर रूप देखते,
संतुष्ट वासी निज देश के हुए ॥३४॥

प्राणी सहस्रों तब थे बना रहे,
निर्भीक हो क्षार विशाल देश में।
विच्छेद सम्पूर्ण हुआ विधान का,
कोई नहीं था, वश में नरेश के ॥३५॥

अत्यन्त कोपातुर हो जनेश के,
उच्चाधिकारी अति क्षुब्ध हो गए।
बंदी बनाने निज जेल पाश में,
सत्पूज्य नेता जन को लगे तभी ॥३६॥

सम्पूर्ण जेलें भर शीघ्र ही गईं,
नारी, युवा, वृद्ध, कुमार वीर से।
बन्दी हुए राष्ट्र-पिता स्वशत्रु से,
जैसे निशानाथ नितांत राहु से ॥३७॥

दी अर्थ-पीड़ा, जन-मात्र को तभी,
गो, बैल, लूटे गृह दण्ड में गए।
थी शासकों में कुछ भी दया नहीं,
अन्यायकारी जग में प्रसिद्ध हैं ॥३८॥

ज्यों मेघमाला रवि को कभी-कभी,
है ढाक लेती निज शक्ति-दर्प से।
राकेश भी, तारक वृन्द भी यथा,
हैं लुप्त होते जलवाह से सदा ॥३९॥

त्यों तेजशाली रवि, चन्द्र-से तभी,
गांधी महात्मा कुछ काल के लिए।
बन्दी हुए मित्र समेत जेल में,
स्वर्गीय आमायुत देव-तुल्य थे ॥४०॥

थे लार्ड भारी भयभीत शक्ति से,
छोड़ा सभी को कुछ वर्ष में तथा।
गांधी बुलाए फिर आर्ज से गए,
वे सन्धि वार्ता अरि से करें वहाँ ॥४१॥

रक्खी समस्या निज देश की सभी,
थे श्वेत लोमी पर गोल मेज के।
आमोदकारी नभ-पुष्प को दिखा,
चाहा लुभाना बस पूज्य-देव को ॥४२॥

सम्मान के साथ पुनः नृपेन्द्र के,
प्रासाद में वे पहुँचे दिनेश-से।
भूपेन्द्र भी सादर वेग से बढ़े,
राजर्षि से हाथ मिला प्रसन्न थे ॥४३॥

मानो मिले कोशल-राज थे तभी,
राजर्षि सम्मानित गाधि-पुत्र से।
या थे मिले दो रवि एक साथ ही,
ब्रह्माण्ड में कोटिक भानु राजते ॥४४॥

मानो महागर्व, अपूर्व योग ही,
दोनों मिले थे तब मूर्तिमान हो।
ऐश्वर्य या दैन्य मिले सदेह थे,
या दो विरोधी वर रूप थे मिले ॥३५॥

छोटी लँगोटी तन में विलोकते,
ओढ़े हुए चादर मात्र देह में।
पूँछा तभी भूपति ने अधीर हो,
योगीन्द्र हो क्यों इस भाँति वेष में ॥४६॥

"ऐ जार्ज ! क्यों क्षुब्ध मुझे निहारते,
हैं व्यक्ति ऐसे निज देश के सभी।
आहार पाते भर पेट जो नहीं,
संतुष्ट कैसे फिर देह हो भला ॥४७॥

होता सदा शोषण देश में वहाँ,
ऐसी दशा आर्थिक शोचनीय है।
होता यथा योग्य न वस्त्र देह में,
मैं हूँ उसी का प्रति रूप देखिये ॥४८॥

[द्रुत विलम्बित]

वचन को सुनते मृदु भाव से,
अति विनम्र कहा तब जार्ज ने।
"यह पता मुझको कुछ था नहीं,
सकल भारत के जन दुःख में ॥४९॥

सतत ही मुझको लिखते रहे,
यह सदा सब वाइसराय थे।
बहुत है सुख भारतवर्ष में,
कुछ न कष्ट वहाँ नर को कभी ॥५०॥

विदित आज हुआ अब आप से,
नरक- संकट भारत भोगता।
बहुत शीघ्र स्वतंत्र बने, उसे,
दुख न लेश रहे यह कामना। ॥५१॥

तव विदा शुभ लेकर भूप से,
अति समादृत हो इँगलैंड से।
वह चले फिर भारतवर्ष को,
कुछ न हर्ष, न लेश विषाद था ॥५२॥

[शार्दूल विक्रीडित]

था विश्वास अपार आत्मबल में गाँधी सुधी वीर को,
आज्ञा प्राप्त हुई सभी नमक को, चाहे बनाएँ कहीं।
सेवाग्राम न जा सके फिर कभी, आधीनता थी बनी,
दण्डी का प्रण पूर्ण होकर रहा, स्वाधीनता-प्राप्ति से ॥५३॥

———

:यादश सर्ग

(धरना)

इन्द्र वंश

साम्राज्यवादी जब विश्व के सभी,
बाजार का क्षेत्र बना सुदूर में।
व्यापार का जाल-महा बिछा वहाँ,
सम्पत्ति को थे अपनी बढ़ा रहे ॥१॥

संसार में थे दल दो बने तभी,
सम्पन्न होता बस एक जा रहा।
था दैन्य का कातर रूप दूसरा,
दोनों बने शोषक शोष्य अंत में ॥२॥

बाजार निर्माण निमित्त युद्ध भी,
साम्राज्य शाली-दल में हुए कई।
व्यापार था आश्रित एक तंत्र के,
सीमा बढ़ाते निज राज्य की अतः ॥३॥

वे थे घटाते कर को स्वपक्ष में,
भारी बढ़ाते उस को विपक्ष में।
ऐसा बनाते अति पंगु अन्य को,
होती गुलामी दृढ़ थी विदेश में ॥४॥

अंग्रेज का घातक स्वार्थ था बड़ा,
संपूर्ण ही भारत वर्ष राज्य में।
संहारकारी 'कर' को लगा नये,
बोता यहाँ था वह बीज दैन्य का ॥५॥

व्यापार विस्तार किया यहाँ, अरे,
बाजार रक्खा अपने प्रभाव में ।
सस्ती अनोखी इँगलैंड वस्तु को,
आकृष्ट होते जन मन्त्र-मुग्ध हो ॥६॥

लक्ष्मी हमारी इस भाँति सर्वथा,
प्रस्थान होती गृह से शनैः शनैः ।
जाता नहीं था इस ओर चित्त भी,
नेत्रादि थे मोहित भव्य वस्तु से ॥७॥

होते अकर्मण्य मनुष्य जा रहे,
सारी कलाएँ सब भूलते गए।
सौन्दर्य शाली प्रति वस्तु के लिए,
देते उन्हें थे अति धन्यवाद भी ॥८॥

गोरे बताते जग से महा सुखी,
प्राणी सभी भारतवर्ष देश के।
थे मानते भी हम मुक्तकण्ठ से,
आनन्द दाता इँगलैण्ड राज्य है ॥९॥

मन्तव्य होता उनका सुसिद्ध था,
भारी व्यवस्थापक शान्ति के बने।
हा, भक्तों को समझा कुबुद्धि से,
प्यारा हितैषी अपना यथार्थ में ॥१०॥

आलस्य आया इस भाँति देश में,
अन्याय को भी सहते समोद थे।
विज्ञान दाता इँगलैण्ड मात्र को,
संसार के ऊपर मानने लगे ॥११॥

वृक्षादि जैसे अति जीर्ण मध्य में,
होते, बने हैं कमनीय बाह्य में।
त्यों ही व्यवस्था इस देश की हुई,
दुःखादि दारिद्र्य भरे स्व गेह में ॥१२॥

गांधी महात्मा बस पूर्ण रूप से,
थे जानते कारण सर्व दैन्य का।
चर्खा सिखाया इस हेतु योग से,
लज्जा बचाई धन-हीन दीन की ॥१३॥

"ले लो इसे चक्र समान हस्त में,
दारिद्र्य रूपी शिशुपाल को हनो।
लक्ष्मी बचाओ सहसा स्वगेह की,
जाएँ विदेशी निज धाम को अभी ॥१४॥

सत्प्रेम का सूत्र बना सुअक्ष से,
टूटे हुए मानस को मिला सभी।
आगे बढ़ो वर्म बना शरीर को,
होगी नहीं हार कभी भविष्य में ॥१५॥

जो वस्तुएँ हों निज देश में बनी,
प्यारी लगें वे व्यवहार में सदा।
लक्ष्मी रहेगी वशवर्तिनी यहाँ,
दैन्यादि होंगे ध्रुव नष्ट मान लो ॥१६॥

त्यागो विदेशी प्रति वस्तु को सभी,
मुद्रा करोड़ों निज देश में बचे।
उद्योग होगा इससे हरा-भरा,
बेकार होंगे जन देश के नहीं ॥१७॥

प्यारे कलाकार स्वदेश के दुखी,
अन्यत्र कारीगर हैं महा सुखी।
है भेद का कारण दूसरा नहीं,
हैं दोष-भागी इस देश के सभी ॥१८॥

वस्त्रानुरागी रमणीय सर्वथा,
शोभा बढ़ाते अपनी, न जानते।
हैं रक्त से रञ्जित भव्य वस्त्र वे,
कारीगरों के मृत, अन्न के बिना ॥१६॥

अंग्रेज का शासन देश में बना,
व्यापार के कारण ही, विचार लो।
ज्यों त्याग दो वस्तु-बनी विदेश की,
गोरे चलेंगे द्रुत देश से सभी ॥२०॥

जो है मिटानी परतंत्रता अभी,
संकल्प ऐसा मन में करो सभी।
लेंगे नहीं मोल उन्हें, विदेश से,
आते यहाँ जो रमणीय वस्त्र हैं" ॥२१॥

देते सुशिक्षा इस भाँति नित्य थे,
क्या हानि होती पर-देश-वस्त्र से।
कांग्रेस द्वारा फिर घोषणा हुई,
होगा वहिष्कार विदेश-वस्त्र का ॥२२॥

क्या भाग्यशाली वह शुभ्र वार था,
संग्राम छेड़ा जब तात ने नया।
आये स्वयंसेवक वीर वेश में,
निस्सीम उल्लास भरे शरीर में ॥२३॥

दूकान के सम्मुख वे खड़े हुए,
ले-ले तिरंगा निज हाथ में सभी।
जाते वहाँ ग्राहक वस्त्र के लिए,
वे रोकते थे उनको विनम्र हो ॥२४॥

वे लौटते, जो अति नम्र व्यक्ति थे,
अंग्रेज-आराधक थे न मानते।
तत्काल क्रोधातुर हो दुकान में,
जा, लक्ष्य पूरा करते उमंग में ॥२५॥

उद्दंड ऐसे नर ज्यों न मानते,
होते स्वयंसेवक मध्य-मार्ग में।
मिथ्याभिमानी तब भी न लौटते,
वे रौंदते ही बढ़ते, खरीदते ॥२६॥

अंग्रेज के भक्त मदांध थे हुए,
सम्मोह होता पद-नाम का उन्हें।
प्यारे स्वयंसेवक की न मानते,
लेते विदेशी कपड़े समोद थे ॥२७॥

लाठी गिराते जब राज्य-दूत थे,
खाते स्वयंसेवक चोट भक्ति से।
संकल्प को वे फिर भी न छोड़ते
संकल्प ऐसा उनमें अपूर्व था ॥२८॥

बंदी बनाते, रिपु जेल भेजते,
उत्साह होता उनका न मंद था।
जत्था निराला तब आ विराजता,
सानन्द गांधी-जय बोलता हुआ ॥२६॥

देती कहीं थीं धरना सुदेवियाँ,
जो गेह के भीतर राजतीं सदा।
थीं देखने में महिला सरोजिनी,
निस्सीम था साहस चित्त में भरा ॥३०॥

बूढ़े बड़े दैहिक शक्ति के बिना,
आह्वान गांधी-वर का सुना जभी।
देशानुरागी नर शीघ्र ही चले,
देने लगे थे धरना प्रसन्न हो ॥३१॥

गांधी महात्मा-जय के निनाद से,
सारी दिशाएँ तब गूजतीं, अहो।
"बेचो विदेशी कपड़े न भूल से,'
देता सुनाई सब ओर से यही ॥३२॥

पाला विदेशी पर पूर्ण छा गया,
लेता न कोई गज भी सुवस्त्र था।
ताले पड़े भारत की दुकान में,
थे कारखाने सब बंद दूर के ॥३३॥

[द्रुत विलम्बित]

जनक जेल गए, जननी गईं,
समुद बन्धु गए, भगिनी गईं।
तरुण वीर गए, तरुणी गईं,
जब पुकार हुई निज देश की ॥३४॥

सुत गए सँग तात, सुता गईं,
गुरु गए, वर शिष्य गए सभी।
पुरुष रत्न गए, महिला गईं
करुण देश-पुकार हुई जभी ॥३५॥

बहुत भीड़ हुई जब जेल में,
परम विस्मित-से अरि हो गए।
यह कभी सरकार न जानती,
अधिक हैं प्रिय मोहन देश के ॥३६॥

जन गए यदि जेल नहीं, तभी
कर रहे रचनात्मक कार्य थे।
भवन में चलने चरखे लगे,
मधुर गूँज उठी ध्वनि देश में ॥३७॥

सब युवा, युवती, शिशु वृन्द के,
कर लगे करने सब काम थे।
जन न कर्म विहीन रहे कहीं,
समय की पहचान हुई उन्हें ॥३८॥

सुभग सूत बना कर हाथ से,
पहनते शुभ खद्दर प्रेम से।
जग गए जन भारतवर्ष के,
सहज क्रान्ति जगी निज देश में ॥३९॥

सुजन के कर में तकली सजी,
सहज राशि लगी शुचि खद्र की ।
चरम लक्ष्य बना बस एक था,
पुरुष-पुंगव के उपदेश से ॥४०॥

परम था परिवर्तन हो गया,
बहुत खिन्न हुई सरकार थी ।
उस महा व्रत के परिणाम को,
अहह, जान सकी पहले नहीं ॥४१॥

जब यहाँ कल थी जन को नहीं,
निरत थे अपने शुभ कर्म में ।
विकल श्वेत हुये घन के बिना,
कल हुए सब बंद विदेश के ॥४२॥

तब लगे मन में अरि सोचने,
जग गया अब भारतवर्ष है ।
दमन के बल से निज राज्य को,
बस चला सकते न भविष्य में ॥४३॥

विफल मोहन थे करते अहा,
दमन को नित ही सब शत्रु के ।
सतत खद्दर ढाल बनी तथा,
परम चक्र बना चरखा रहा ॥४४॥

विमल देश बनी सब वस्तुएँ,
बहुत सुन्दर थीं लगतीं उन्हें ।
बस यही वह साधन था यहाँ,
विगत राज्य मिला रण के बिना ॥४५॥

चतुर्दश सर्ग

(हरिजनोद्धार)

इन्द्रवंश

दुर्भाग्य जागा जब आर्य जाति का,
सद्भाव, सत्प्रेम विनष्ट हो गया।
आया अहंभाव द्विजाति में, हुई,
उत्पन्न हा ! छूत-अछूत भावना ॥१॥

जाना रुका मन्दिर में अछूत का,
सम्बन्ध टूटा अखिलेश-भक्त का।
लेने न पाते जल कूप से कभी,
लेते जहाँ से नर उच्च वर्ण के ॥२॥

थे घाट होते उनके विभिन्न ही,
होता मुहल्ला सब भाँति दूर था।
जाते कभी थे उस मार्ग से न वे,
जाते जहाँ पण्डित गर्व में, अरे ॥३॥

जाते सभा में द्विज की न वे कभी,
जाते कहीं तो अति दूर बैठते ।
वे घोर पाते अपमान नित्य ही,
होता नहीं था परिताप क्या उन्हें ।।४।।

पूरा बहिष्कार हुआ समाज से,
माने गए वे पशु से गिरे हुए ।
जाता कहीं छू सहसा अछूत से,
संताप होता द्विज को अतीव था ।।५।।

तत्काल गङ्गा-जल से विशुद्ध हो,
संतुष्ट होते द्विज थे स्वचित्त में ।
धर्माभिमानी नर से विडम्बना,
अत्यन्त लज्जा मिलती अछूत को ।।६।।

अन्याय ऐसा गुरु को न सह्य था,
मर्मान्त पीड़ा उनको सदैव थी ।
आरम्भ से ही इसके विरुद्ध थे,
'ऊका' महा था प्रिय बाल्य काल में ।।७।।

गांधी महा चिन्तित थे कुकृत्य से,
वे नित्य देते उपदेश जाति को ।
संसार-वासी बस बन्धु मात्र हैं
संतान सारी जगदीश एक की ।।८।।

चाण्डाल, ज्ञानी, द्विज, शूद्र एक-से,
आत्मा सभी में रहता समान है ।
हैं दीखता अन्तर बाह्य कर्म से,
कोई न ऊँचा उनमें न तुच्छ है ।।९।।

क्या कर्ण नेत्रादि अनेक इन्द्रियाँ,
छोटी बड़ी हैं निज कर्म से कभी।
कर्त्तव्य त्यों हैं सब वर्ण में बँटे,
कोई नहीं है लघु कर्म से कभी ॥१०॥

सत्प्रेम से वंचित अर्धनग्न हो,
आजन्म सामाजिक कार्य में लगे।
आराम:मी क्या करते अछूत हैं,
वे जाति-आधार-शिला अनादि से ॥११॥

बाजार-वीथी-पथ को बुहारते,
हैं जो उठाते मल को विनीत हो।
निंदा उन्हीं की करते सगर्व हैं,
वे ही बने त्याज्य द्विजाति से, अरे ॥१२॥

जातीय संदर्प विसार सर्वथा,
बापू-महा आश्रम में समान ही।
प्रत्येक प्राणी प्रति कार्य को सदा,
उल्लास से था करता स्वहस्त से ॥१३॥

होता उठाना मल को कभी-कभी,
झाड़ू लगाना पड़ता कभी-कभी।
उच्छिष्ट पात्रादि अभेद माँजते,
हो विप्र या क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या ॥१४॥

था अन्ध-विश्वास अपार जाति में,
धर्माभिमानी चिर-रूढ़ि-भक्त थे।
वे चाहते थे उनको न चित्त से,
कल्याण-कारी नव चेतना न थी ॥१५॥

ज्यों-ज्यों बढ़ा ज्ञान अछूत वर्ग में,
उत्थान का भाव जगा शनैः-शनैः।
"कैसे जगेगी यह जाति नींद से,
मर्मान्त घातें सह जो नहीं जगी ॥१६॥

सम्मान से हीन अछूत व्यक्ति हैं,
व्यक्तित्व भी है इनमें गिरा हुआ।
कल्याण होगा इनका कभी नहीं,
एका नहीं है करते तुरन्त ये ॥१७॥

जातीय नेता इनमें बने कई,
व्याख्यान देते निज निम्न वर्ग में।
"सम्मान पाते न कभी द्विजाति से,
आधन्त सेवा करते अमूल्य ही ॥१८॥

हिन्दू कहाना यदि छोड़ दें सभी,
त्यागें अभी से नरकीय यातना।
उद्धार होगा अपमान से तभी,
उत्थान होगा सहसा अछूत का" ॥१६॥

हो भिन्न निर्वाचन निम्न वर्ग का,
धारा सभा में यह प्रश्न आ गया।
ज्यों जेल में ज्ञात हुआ स्वतात को,
अत्यन्त दुःखी उस नीति से हुए ॥२०॥

"शाखा कभी क्या तरु से विभिन्न हो,
फूली फली है यह सोचने लगे।
है हानि दोनों दिशि से अपार ही,
हिन्दू हितों की जड़ नष्ट हो रही ॥२१॥

द्रोही सदा को निज कूटि नीति से,
स्थाई बनाना निज राज्य चाहते ।
होगी भलाई इस कार्य से नहीं,
भावी दशा है अति चित्य सर्वथा ॥२२॥

आजन्म रक्खा भगवान राम ने,
सत्कार सम्मान अछूत जाति का ।
प्यारे निषादादि अछूत, भील से,
थे कंठ से वे मिलते उदार हो ॥२३॥

सानन्द खाए सबरी विनीत के
उच्छिष्ट ही बेर बखानते, अहा !
पाई महा ख्याति समस्त विश्व में,
वे प्राण से भी प्रिय जाति के बने ॥२४॥

बन्धुत्व से ही उन भील वर्ग के,
जीता कभी युद्ध सुधी-प्रताप ने ।
स्वामी दयानन्द-विचार था यही,
देते रहे प्राण अछूत दीन को ॥२५॥

स्वामी न लेते निज साथ में उन्हें,
सद्भावना से सहभोज आदि से ।
इस्लाम आराधक हो स्वजाति के,
आजन्म बैरी बनते निदान वे ॥२६॥

सारे इसाई धन लोभ को दिखा,
जाते मिलाते उनको स्वजाति में ।
संख्या बढ़ाते अपनी सदैव थे,
लाचार हिन्दू-हित का विनाश था ॥२७॥

स्वामी दयानन्द अतीव धन्य हैं,
उत्सर्ग था जीवन देश के लिए।
आजन्म उद्धार किया अछूत का,
थे कर्म से वर्ण विभाग मानते ॥२८॥

दुर्भाग्य से सत्वर स्वर्ग को गए,
प्रारम्भ सत्कर्म नितान्त शेष है।
शंका अभी भी मुझको बनी यही,
ये अंग होंगे पर जाति के कभी ॥२९॥

क्या सह्य होगा मुझको अछूत वे,
इस्लाम-ईसा-मत में प्रविष्ट हों।
आत्मा यही है कहता, सचेत हो,
रक्षा करो शीघ्र अछूत जाति की" ॥३०॥

तत्काल संकल्प किया अपार यों,
"मैं त्यागता हूँ अब अन्न आज से।
इक्कीसवें वासर में विशुद्ध हो,
साहाय्य दूँगा फिर निम्न वर्ग को ॥३१॥

गांधी-प्रतिज्ञा सुन शोक-मग्न हो,
संसार वासी भयभीत हो गए।
भारी अँधेरा सब ओर छा गया,
कर्तव्य का ज्ञान रहा उन्हें नहीं ॥३२॥

होने सभाएँ निज देश में लगीं,
आई समस्या किस भाँति दूर हो।
प्राणी मनाने भगवान से लगे,
प्रत्येक ही मन्दिर में समाज के ॥३३॥

"हे दुःख हर्ता, जन-ताप को हरो,
गांधी सुधी में नव शक्ति को भरो।
पूरी प्रतिज्ञा उनकी विशेष हो,
भावी महा संकट शीघ्र दूर हो ।।३४।।"

प्रस्ताव भेजे सब ओर से गए,
कारा-निवासी गुरु के समीप में।
त्यागो प्रतिज्ञा, तरणी स्वदेश की,
डूबे नहीं हाय, अभाग्य से कहीं ।।३५।।

शैलेश-से थे दृढ़ राष्ट्र के पिता,
क्या त्यागता है ध्रुव ठौर को कभी।
संकल्प होता प्रिय प्राण से कहीं,
क्या राम या कृष्ण हटे स्वमार्ग से।।३६।।

आती गई हा, कृशता शरीर में,
छाता गया तेज परन्तु और ही।
है भव्यता ज्यों बढ़ती सुवर्ण की,
हो तप्त सौ बार प्रचण्ड अग्नि में ।।३७।।

चिंता यहाँ की सरकार को हुई,
होगा कहीं अंत अपूर्व संत का।
संसार से भी अपमान-कालिमा,
न्यारी लगेगी मुख में सदैव को ।।३८।।

गांधी-महा-चिन्त्य-दशा विलोकते,
आवेश जागा नर-नारि में यहाँ।
प्रस्ताव भेजे सरकार को गए,
दो छोड़ गांधी प्रिय को अभी-अभी ।।३९।।

छोड़े गए राष्ट्र-पिता तुरन्त ही,
प्रत्यक्ष ही हार हुई नरेश की।
सद्भक्त गांधी विभु के बने सभी,
माँगा उन्होंने न समाज दूसरा ॥४०॥

हो मुक्त, आये वह जेल से जभी,
दौड़ा किया भारत देश-प्रान्त में।
सत्प्रेम से ही द्विज को अछूत से,
जा, जा मिलाया प्रति भूमि-भाग में ॥४१॥

जाने लगे मन्दिर में अछूत भी,
थी प्रेरणा राष्ट्र पिता अपूर्व की।
जाना उन्होंने अविभाज्य अंग ही,
हिन्दू द्विजों से न कदापि भिन्न हैं ॥४२॥

अस्पृश्यता को शुभ थे बता रहे,
काशी-महा पंडित थे विरोध में।
उद्योग से तत्क्षण मालवीय के,
साथी बने वे सब दीनबन्धु के ॥४३॥

पूरा मिला योग अछूत वर्ग का,
वे भी विरोधी गत नीति के बने।
निर्णीत निर्वाचन के विचार को,
त्यागा उन्होंने सब भाँति चित्त से ॥४४॥

अंग्रेज की शक्ति अपार सर्वथा,
हारी, चली चाल नहीं अनीति की।
उद्धार आमूल अछूत का हुआ,
हिन्दू-सुरक्षा सब भाँति हो गई ॥४५॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

होता है जब कष्ट दीन जन को, उद्धार के ही लिए,
दुष्टों की जब घोर नीति बढ़ती, सद्भाव उन्मेष को।
आते हैं तब भव्य व्यक्ति भव में, अत्यन्त ही शक्ति ले,
गांधी जी इस भाँति के पुरुष थे, आये यहाँ मुक्ति को ॥४६॥

पंच दश सर्ग

(भारत छोड़ो)

१९४२

इन्द्र वंश

स्वाधीनता के प्रति देश व्यग्र था,
लाखों हुए आहुति युद्ध-कुण्ड में।
संलक्ष्य हा। दूर रहा अभाग्य से,
सत्ता बनी ही पर जाति की रही ॥१॥

गांधी विदेशी अधिकार से दुखी,
थे चाहते केवल एक लक्ष को।
प्रस्थान गोरे इस देश से करें,
सम्पत्ति शाली सब भाँति राष्ट्र हो ॥२॥

संघर्ष में ही दिन बीतते गए,
विश्राम लेते क्षण भी कभी नहीं।
उद्योग में ही फल है छिपा हुआ,
राष्ट्रीयता जागृत हो गई यहाँ ॥३॥

सम्पूर्ण नेता गण एक हो गए,
प्रस्ताव भी पारित शीघ्र हो गया।
"जाएँ यहाँ से अविलम्ब सर्वथा,
अंग्रेज को है रहना यहाँ नहीं" ॥४॥

क्रोधाग्नि जागी सरकार की महा,
नेता सभी बन्द हुए वर्णक में।
विश्वास ऐसा उसको अटूट था,
उत्साह सारा दब जायगा यहाँ ॥५॥

नेता हुए बन्द जभी तुरन्त ही,
उन्मत्तता व्याप्त हुई स्वदेश में।
सोते हुए सिंह जगे मानो तभी,
उत्पात होगा जिनसे समाज में ॥६॥

आठों दिशा में यह वाक्य गूँजता—
'अंग्रेज भागो यह देश त्याग दो।'
विद्यालयों से ध्वनि आ रही यही,
'तत्काल जाओ यह देश मुक्त हो' ॥७॥

छात्रालयों से फिर घोषणा हुई—
'श्वेतांग जाओ सलिलेश पार हो।'
अध्यापकों के दल ने यही कहा—
'त्यागो महा पूजित मातृ भूमि को' ॥८॥

कारीगरों ने भय मुक्त हो कहा—
'छोड़ो घरा को कुछ देर हो नहीं।'
जादूगरों ने हँसते हुए कहा—
'भागो नहीं तो बस मंत्र फूँकते ॥६॥

आवेश में आ कहते किसान थे—
'जाते नहीं क्यों बनते पिसान हो।'
'छोड़ो अभी देश विचार चित्त में',
छोटे जमींदार यही पुकारते ॥१०॥

संभ्रांत मानी कहते वकील थे—
'त्यागो अभी स्वर्ग समान भूमि को।'
था नारियों का यह गान ही बना,
जाओ यहाँ से निज देश को अभी ॥११॥

प्राणी सभी उत्सुक थे पुकारते—
'जाओ हटो शीघ्र कुटुम्ब संग ले।'
था पक्षियों की ध्वनि में यही बसा—
'छोड़ो हमारा प्रिय देश आज से ॥१२॥'

नाले नदी से रव गूँजता यही—
'गोरे भगो भारत से विरक्त हो।'
नारे सुनाते कमनीय गेह थे,
'क्यों हो रुके! शीघ्र भगो स्वदेश को ॥१३॥'

आती हवा भी कहते हुए यही—
'जाओ अभी भारत से अभी-अभी।'
गोरे जहाँ ही मिलते उन्हें सुना,
था बोलता यूथ 'भगो-भगो-भगो' ॥१४॥'

सारे निवासी मन से पुकारते—
'जाओ नहीं है अब काम आप का।
जाओ अभी सत्वर देश छोड़ दो,
क्या प्राण खोना सब को अभीष्ट है ॥१५॥'

सोते हुए श्वेत अधीर भागते,
अत्यन्त ही वे भयभीत हो गए।
वे देखते थे फिर स्वप्न रात्रि में,
वारीश को तत्क्षण पार हो रहे ॥१६॥

आतंक ऐसा मन में सवार था
सोते हुए वे यह देखते कभी।
हैं भागते वे परिवार संग ले,
पीछे भगाते सब भारतीय हैं ॥१७॥

आबाल-वृद्धों तक में उमंग था
वे कर्म में तत्पर हो गये सभी।
लेना हमें है अब राज्य क्रान्ति से,
है शक्ति-भोग्या वसुधा अनादि से ॥१८॥

ज्यों व्याप्त होगी नव क्रान्ति देश में,
व्यापार होगा सब बन्द मूल से।
गोरे हटेंगे फिर देश से, कभी,
स्वाधीन होगा यह देश शीघ्र ही ॥१६॥

विद्यालयों को तज वेग से बढ़े,
विद्यार्थियों के दल पूर्ण देश में।
उत्पात होने फिर घूम से लगा,
व्यापी यहाँ क्रान्ति समस्त भूमि में ॥२०॥

योद्धा चले और विभाग से तभी,
उन्मत्त वे थे निज राज्य के लिए।
यों क्रान्तिकारी दल देश में बढ़ा,
आह्वान था भीषण क्रान्ति के लिए॥२१॥

काटा उन्होंने बढ़ तार को कहीं,
रोका समाचार समस्त देश का।
पत्रालयों को खख में जला दिया,
सम्वाद का साधन नष्ट हो गया ॥२२॥

तोड़ी गई सत्वर रेल लाइनें,
आयात निर्यात रुका स्वदेश का।
रेलादि में अग्नि लगा तुरन्त ही,
सानन्द फूँका युग-धर्म था यही ॥२३॥

नाले नदी के पुल को गिरा दिया,
गाड़ी तथा मोटर चाल रोक दी।
संपर्क विच्छेद हुआ समाज का,
बाधा पड़ी त्यों सब राज्य कार्य में ॥२४॥

'कोषालयों, को जन लूट लें तथा,
फूँकें, बढ़े आर्थिक कष्ट राज्य में।
दें कर्मचारी तज राज्य कर्म को,
हो अव्यवस्था, सब शांति नष्ट हो ॥२५॥

लूटे, उन्होंने कुछ बैंक राज्य के,
होली जलाई फिर नोट की वहाँ।
बाधा पड़ी शासन में नितांत ही,
टूटा बिछा जाल अपूर्व तंत्र का ॥२६॥

प्यारी धरा में नव क्रान्ति छा गई,
व्यापार सारे बस बन्द हो गये।
है लेखनी की वर शक्ति के परे,
भोगी यथा मानव ने विडम्बना ॥२७॥

सारांश में ही बलिया-कथा सुनो,
मित्रो, अहो! क्या उसने किया तभी।
व्यापी महाक्रान्ति वहाँ अनूप थी,
दुर्भाग्य वैसा सब ने किया नहीं ।।२८।।

डी० सी० वहाँ का सब स्वत्व दे हटा,
'पाण्डेय चीतू' वर देश-भक्त को।
आया जिले का अधिकार हाथ में,
स्वाधीनता प्राप्त हुई अलभ्य ही ।।२६।।

ले राज्य का मुक्त विधान हाथ में,
सारा हुआ कार्य विचित्र ढंग से
सोचा उन्होंने समयानुसार था,
होंगे सभी मुक्त इसी प्रकार से ।।३०।।

स्वाधीनता का शुभ भानु देखते,
उत्फुल्ल था मानस-कंज और ही।
जागे सभी मुक्त अहा, प्रभात में,
कर्तव्य आरूढ़ हुए सगर्व थे ।।३१।।

झंडा-तिरंगा फहरा सभी कहीं,
न्यायालयों में अति दर्प भाव से।
स्वाधीनता की जय बोलते हुए
सम्मान के साथ मनुष्य राजते ।।३२।।

गांधी सुधी की जय बोलते जभी,
था शत्रुओं का मन काँपता तभी।
गांधी व्रती का गुण-गान धूम से
होने लगा भारतवर्ष भूमि में ।।३३।।

दीपावली को सब ने जला बहाँ
पूरा मनाया शुभ पर्व मोद से।
देखा निराला बलिदान कोटिशः
स्वातन्त्र्य-देवी मन में विमुग्ध थी ॥३४॥

राष्ट्रीय कोशालय से निकाल ली,
मुद्रा सहस्रों व्यय हर्ष से हुई।
मिष्ठान्न बाँटे जन में गए तथा,
विद्यालयों में कुछ था विशेष ही ॥३५॥

स्वाधीनता के उपलक्ष में तभी,
दीनों, अनाथों, असहाय, पंगु को
बाँटे गये वस्त्र अनाज द्रव्य थे
सम्पूर्ण ले ले घन राष्ट्र कोष से ॥३६॥

राष्ट्रीय सेवा-प्रति देश-भक्त को,
सम्मान भारी उपहार भी मिले।
स्वाधीनता के रण में डटे हुए,
वृद्धादि को पेन्शन भी मिली तथा ॥३७॥

दुर्भाग्य ऐसा निज देश का जगा,
स्वाधीनता की निधि शीघ्र ही छिनी।
अन्याय का ताण्डव-नृत्य नित्यशः
होने लगा हा! अरि पात्र-वृन्द से ॥३८॥

गोली-उड़ाये नर देश के गए,
रक्षा नहीं थी उनकी कुचक्र से।
जो रेलवे में निशि मध्य दीखता,
तत्काल होता यमराज्य-ग्रास था ॥३९॥

भेजे सहस्रों जन जेल को गए,
थे दोष भागी यदि देश-भक्ति के।
बन्दी बने वे नर भी अभाग्य से,
अंग्रेज के पूजक आदि से रहे ॥४०॥

कोई सहारा जन को मिला नहीं,
संभ्रान्त नेतागण जेल में रहे।
अन्याय द्वारा नव क्रान्ति भी दबी
संत्रस्त हो मानव शांत हो गए ॥४१॥

आई निराशा फिर देश में अरे!
सत्ता जमी श्वेत समाज की यहाँ।
श्वेतांग स्वामी बलिया-चरित्र से
अत्यन्त आश्चर्यित क्षुब्ध थे तथा ॥४२॥

धावा हुआ तत्क्षण श्वेत-श्याम का,
चारों दिशा से बलिया घिरा निरा।
स्वातंत्र्य रक्षा हित वीर थे अड़े,
मैदान में युद्ध छिड़ा विचित्र था ॥४३॥

लोहा लिया भीषण शत्रु से वहाँ,
संग्राम ऐसा जग में हुआ न था।
इस्लाम-सेना रण में 'प्रताप' से,
मानों अड़ी थी लड़ने प्रभुत्व से ॥४४॥

स्वाधीनता प्राङ्गण में मरे, उन्हें
देते बधाई दिवि देवनाथ थे।
लक्ष्मी सजा सुन्दर आरती तथा,
सम्मान देती उन देश-भक्त को ॥४५॥

मानो 'शिवा' द्वार लिए विराजते,
उत्कण्ठता पूर्वक भेंट वारते ।
राणा गले से मिलते प्रसन्न थे,
स्वाधीनता के रण को सराहते ॥४६॥

संग्राम का अन्त हुआ अभाग्य से
लौटी गुलामी कुछ वर्ष के लिए ।
झंडा तिरंगा फहरा रहा जहाँ,
हा ! 'जैक' झंडा फिर से लगा वहाँ ॥४७॥

(द्रुतविलम्बित)

कुपित होकर सज्जन को वहाँ,
दमन श्वेत लगे करने, अरे ।
सहज धर्म मिटा, पशुता जगी,
रुधिर की महती सरिता बही ॥४८॥

अतुल मानवता जिसमें रही
हृदय में जननी प्रति भक्ति थी ।
बस जिन्हें प्रिय भारत-राज्य था,
बन गये सब शत्रु शिकार थे ॥४६॥

अधिक ताड़ित थे कुछ दुष्ट से,
कठिन जेल मिली कुछ को वहाँ ।
शिर कटे कुछ के क्षण मात्र में
कुछ विनष्ट हुए सकुटुम्ब थे ॥५०॥

जब हुआ परिशोध नहीं पुनः,
तुरत अग्नि समर्पित धाम थे ।
शिशु, युवा, महिला जन मात्र, हा !
जल भुने, न बचे नरमेध में ॥५१॥

अध जले जन को भगते हुए,
पकड़ भून दिया फिर अग्नि में।
बच सके न मरे प्रलयाग्नि से,
तुमुल ताण्डव था बस काल का ॥५२॥

करुण रोदन था सब ओर ही
श्रवण को करता अति क्षुब्ध, हा!
रुदन को सुनते पवि भी गला,
विहसते अरि थे पर मोद से ॥५३॥

जिस प्रकार कभी बन-अग्नि से,
विवश हो जलते बन जीव हैं।
अहह ! मानव दानव-कोप से,
बस, जले उस भीषण अग्नि में ॥५४॥

भग गई करुणा उस ठौर से,
कुटिलता सहमी अति नाश से।
अधम कार्य हुआ जग में नहीं,
पुरुषमेध हुआ जिस भाँति था ॥५५॥

लपट जो निकली नर-यज्ञ से
गगन में अब भी अवशेष है।
हृदय भूल सका न जघन्य को,
विकल मूर्छित है, अति दग्ध है ॥५६॥

सजल दो उनको कुसुमाञ्जली,
अमर हैं मन-मन्दिर में सदा।
अकथ पावन कीर्तन-गान से,
विमल चित्त करो त्रय काल में ॥५७॥

अब नहीं चलती यह लेखनी,
रुक गई सहसा असमर्थ हो।
अमर मानव, हैं मम ओर से
सजल अर्पित ये कुछ पंक्तियाँ ॥५८॥

।डश सर्ग

(पूना जेल)

शार्दूल विक्रीड़ित

आगा के वर गेह में जब हुए, वन्दी बयालीस में,
गांधी के सँग वा रहीं प्रियतमा, मन्त्री महादेव थे।
देसाई वर-बुद्धि से चकित थे, प्राणी सभी देश के,
ऐसा पा कर मित्र आत्मबल का, गांधी महा मुग्ध थे।।१।।

इच्छा थी विधि की नहीं, मुदित हो, गाँधी रहें सर्वथा,
छीना सत्वर काल ने, सुहृद को, दुःखी सभी कोबना।
गाँधी को दुख जो हुआ, उस घड़ी, है कल्पना के परे,
टूटा था भुज दाहिना, पृथक हो, होता न क्यों क्लेश, हा।।२।।

की अन्त्येष्टि चिता बना, कर वहाँ, रोते हुए चित्त से,
था मर्मांत विषाद देख शव की, ज्वाला सखा देह के।
वाणी थी अवरुद्ध नेत्र जल से, धारा चली वेग से,
होता था न कभी अधीर मन जो, डूबा वही दुःख में।।३।।

भूला था न वियोग मित्र तब ही, लौटा महाकाल, हा,
'बा' को लेकर भी चला पलक में, आई दया थी नहीं।
बायाँ हाथ छिना पुनः सतत जो, साहाय्य देता रहा,
गांधी जी दुख-सिन्धु में बह गए, छूटी सदा संगिनी ॥४॥

छाया के सम नित्य संग रहती, टाली न आज्ञा कभी,
कारा में, गृह में, विदेश जन में, आनन्द में, दुःख में।
थी सानन्द सदैव साथ पति के, स्वातंत्र्य संग्राम में,
नारी-रत्न, पति व्रता विलग हो, दुःखी बनाती न क्यों ॥५॥

आई याद अतीत की जब बड़ी, ज्वाला चिता की बहाँ,
होते विह्वल, शोक से जलधि में,डूबे कई बार थे।
पीड़ा व्याप्त हुई नितांत मन को, देहान्त व्याधी, अहो,
दोनों मित्र-वियोग से बदन में, आने लगी क्षीणता ॥६॥

स्वर्गीया जब 'बा' हुई स्वजन में, सम्बाद आया तभी,
पूरे भारतवर्ष में विषम ही, छाई घटा क्लेश की।
रोते थे सब जीव जन्तु, जड़ भी, अत्यन्त थी खिन्नता,
सारे कार्य-कलाप भी रुक गए, ताले पड़े हाट में ॥७॥

भारी शोक-सभा हुई सब कहीं, श्रद्धाञ्जली के लिए,
'बा' का गौरव-गान गा हृदय से, संताप खोने लगे।
माता को तज दीन सन्तति निरा, लाचार थी हो रही,
होती है ममता अपूर्व जग में, माता तथा पुत्र की ॥८॥

द्रुत विलम्बित

अखिल भारत आकुल था महा,
ब्रिटिश का कुछ कोप न शान्त था।
दमन की अति भीषण उग्रता,
सन बयालिस से न रुकी कभी ॥९॥

असहनीय भयानक कष्ट था,
स्वजन को निशिवासर जेल से।
जनक-पुत्र मिलाप हुआ नहीं,
बहन से निज बन्धु मिले नहीं ॥१०॥

फिर न बन्धु मिले निज बन्धु से,
मिल सकी भगिनी, भगिनी नहीं।
विरह पीड़ित थे पति जेल में,
दुखित थी महिला गृह में कहीं ॥११॥

कृषक बन्द हुए जब जेल में,
बढ़ गया तब आर्थिक कष्ट था।
उदर भोजन से भरता न था,
गृह गिरे असहाय अनाथ के ॥१२॥

कृषक क्षेत्र-विहीन हुए तभी,
कर मिला न जभी सरकार को।
पृथक व्यक्ति हुए पद से सभी,
हृदय में यदि भारत भक्ति था ॥१३॥

स्वजन पालक ही परिवार के,
विवश बन्द रहे जब जेल में।
तब कुटुम्ब-विपत्ति विचारना,
निपट मानव-मानस के परे ॥१४॥

स्वजन को असहाय विलोकते,
अधिक चिन्तित राष्ट्र पिता हुए।
बदन क्षीण हुआ तब और ही,
छिन गया उनसे सुख सर्वथा ॥१५॥

अतुल भीषण दुर्घटना घटी,
बस अचानक भारतवर्ष में ।
पड़ गया अति घोर अकाल ही,
अहह, शस्य विभूषित बंग में ॥१६॥

विपुल अन्न विदेश चला गया,
ब्रिटिश सैनिक हेतु स्वदेश से ।
पुरुष बञ्चित होकर अन्न से,
विवश प्राण लगे तजने तभी ॥१७॥

पर महा विकराल दशा हुई,
अकथनीय निराश्रित बंग में ।
भवन-भीतर-बाहर पंथ में,
तड़पते सब मानव भूख से ॥१८॥

सकल आहत हो जठराग्नि से,
सड़क में फिरते असहाय हो ।
विभव खोकर भिक्षुक हो गए,
उदर पूर्ति निमित्त धनी, अरे ॥१९॥

अधिक क्षीण हुई तन-शक्ति थी,
उदर पूर्ति न मानव की हुई ।
विकल थे गिरते चलते हुए,
कठिन था चलना फिरना उन्हें ॥२०॥

भवन में, पथ में, शव-राशि से,
बस, भयंकरता अति छा गई ।
करुण दृश्य विलोक कठोरता,
भग गई पल में उस ठौर से ॥२१॥

सङ्कुल आकुल हो नर-गेह से,
निकलते बहु कातर भाव से।
भवन में अवशिष्ट न अन्न था,
अधमरे जन थे उपवास से ॥२२॥

धनिक भोजन वञ्चित हो गए,
अकथ अन्न अभाव हुआ तभी।
जब सहायक ले कर अन्न को,
पहुँचते, दबते जन होड़ में ॥२३॥

वह भयंकर दारुण दृश्य था,
भुवन में इस भाँति हुआ नहीं।
अहह, मानवता असहाय हो,
परम लज्जित थी उस काल में ॥२४॥

विधि विधान नहीं वह था अरे,
नर मरे बस व्यक्ति-विधान से।
वृटिश की कटु भीषण नीति ही,
प्रलय ताण्डव कारण थी बनी ॥२५॥

गत किसी युग में न मरे कभी,
नर अपार भयंकर युद्ध में।
निरुपमेय अहो, सब भाँति है,
अकथ है, वह दुर्घटना महा ॥२६॥

दमन भीषण नादिर शाह का,
रुधिर-पात भयंकर लंग का।
सकल दानव के अपराध भी,
निपट भूल गए उस कृत्य से ॥२७॥

जन मरे तब छत्तिस लाख थे,
उस अकाल अलौकिक नाग से।
विदित मोहन को जब हो गया,
हृदय धीर विदीर्ण हुआ तभी ॥२८॥

दिवस इक्किस का व्रत ले लिया,
सहज भोजन छोड़ दिया अहा!
विषम घोर परिस्थिति आ गई,
त्वरित भारत कातर हो गया ॥२९॥

प्रकट की सब ने निज भावना,
विपुल नित्य सभा कर देश में।
"बल नहीं तन में अब शेष है,
तुरत भंग करें उपवास को ॥३०॥

दुख पयोनिधि में जन डूबते,
अखिल के तुम ही पतवार हो।
निज शरीर बचाकर सर्वथा,
सतत रक्षक हो इस राष्ट्र के ॥३१॥

स्वजन विह्वल कातर हो रहे,
हृदय में सहसा भयभीत हैं।
अगम अम्बुधि को दुख के कहीं,
तर सकें न सुनाविक के बिना" ॥३२॥

पर टले न परन्तप लक्ष्य से,
ध्रुव नहीं हटता निज ठौर से।
बदन में कृशता बढ़ती गई,
पर नहीं दृढ़ता कुछ भी घटी ॥३३॥

परम चिन्तित भारत हो गया,
प्रण न भङ्ग किया जब पूज्य ने।
विनय की जन ने, सरकार से,
अमर मानव-रक्षण के लिए ॥३४॥

"उचित है अब सत्वर छोड़ना,
जनक-जीवन संकट देखते।
यदि नई घटना कुछ भी घटी,
धुल नहीं सकती मुख-कालिमा" ॥३५॥

पर न थी करुणा सरकार में,
अटल थी वह भी निज पंथ में।
अतुल हर्ष उसे मन में रहा,
प्रबल शत्रु विनाश अवश्य हो ॥३६॥

सकल मन्दिर में जन याचना,
फिर लगे करने जगदीश से।
"जनक के तन में वह शक्ति दो,
सहज पार करें व्रत को महा" ॥३७॥

वह विचित्र अलौकिक व्यक्ति थे,
अतुल आत्मिक था बल तात में।
जन भयातुर थे लख क्षीणता,
वदन में बढ़ता नित तेज था ॥३८॥

अहह, था शुभ भाग्य स्वदेश का,
सफल पूर्ण हुआ व्रत पूज्य का।
बृटिश विस्मित था उस शक्ति से,
स्वजन हर्षित थे अति चित्त में ॥३९॥

चरम उन्नति में निज देश की,
परम तन्मय वे रहने लगे ।
पर अराजकता बढ़ती हुई,
अधिक कातर थी करती उन्हें ॥४०॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

गांधी की तन जीर्णता निरखते, अत्यन्त चिन्ता हुई,
सोचा था सरकार ने उचित है, छोड़ें इन्हें जेल से ।
होता है विजयी वही सुपथ को, जो त्यागता है नहीं,
होती जीत नहीं कदापि जग में स्वार्थी महा धूर्त की ॥४१॥
गांधी आत्मिक तेज सत्य बल से, लौटे जभी जेल से,
हर्षोन्मत्त स्वदेश था उस घड़ी, सीमा न थी मोद की ।
पीछे अन्य स्वराज्य के समर के, नेता सभी मुक्त हो,
आये, जागृति की अनूप महिमा, छाई महा देश में ॥४२॥
देखा ज्यों सरकार ने दमन से, साफल्य होगा नहीं,
गांधी से फिर सन्धि की नमित हो, त्यागा सभी गर्व को ।
'छोड़ो भारत' घोषणा सहज में, स्वीकार भी हो गई,
दे स्वातंत्र्य महाधिकार अरि भी, प्रस्थान होंगे सभी ॥४३॥

[द्रुत विलम्बित]

जब स्वराज्य मिला निज देश को,
बहुत हर्ष हुआ जन-यूथ में ।
मुदित हो कर मोहन दास के,
विजय-गान लगे करने सभी ॥४४॥

अखिल विश्व विमोहित हो गया,
लख महा परिवर्तन राज्य का,
विमल शांति तथा तप सत्य का,
सुभग पाठ मिला जग को नया ॥४५॥

सहज भारत खण्डित हो गया,
हृदय में इसका परिताप था।
असहनीय रही परतंत्रता,
इस लिए यह मान्य हुआ उन्हें ॥४६॥

लग गए निशि-वासर यत्न में,
चिर मिलाप रहे युग राष्ट्र में।
अहह, अन्तिम लक्ष्य बना यही,
समुद जीवन अर्पित भी हुआ ॥४७॥

———

एकादश सर्ग

(नोवाखाली)

शिखरिणी

भरे उल्लासों में, जिस समय सम्पूर्ण जन थे,
विदेशी सत्ता का, शुभ गमन भी निश्चित रहा !
तभी नोवाखाली, अहह, बलि वेदी बन गई,
सभी प्यारे हिन्दू, अज सम चढ़ाये बलि गए ॥१॥

जलाए हिन्दू के गृह, धन गए, म्लेच्छ दल से,
न कोई लेखा है, जल कर मरे, हाय, कितने।
मिला कोई हिन्दू, वह बच सका क्या उस घड़ी,
सभी अत्याचारी, अभय असि ले प्राण हरते ॥२॥

गए लूटे प्राणी, अधिक धन था पास जिनके,
वहाँ लक्ष्मी वाले, बहुत कम संरक्षित रहे।
कहीं शय्याशायी, पर अरि चढ़े क्रुद्ध मन से,
उन्होंने भालों से, क्षत-हत किया लेश भर में ॥३॥

अनोखे स्वप्नों को, हृदय तल में ले निरत थे,
नहीं जाना था क्या, खलु पवि गिरेगा रजनि में।
सभी वे इच्छाएँ, विवश मन में ही रह गईं,
अधर्मी लोगों ने, सुरपुर दिया भेज क्षण में ॥४॥

कहीं देखा कोई, शुभ भवन को दुष्ट दल ने,
निकाला हिन्दू को, सहज वश में ही कर लिया।
धनी मानी प्राणी, धन रहित हो आत्म बल खो,
क्षुधा से पंथों में, पर-वदन को थे निरखते ॥५॥

पिता की गोदी से, प्रिय तनय को ले मुदित हो,
चलाते थे गोली, विनय उनकी थे न सुनते।
'मुझे गोली मारो, मम सुत बचा लो कर दया,'
अहा, पाषाणों में, कुछ फल न होता पर वहाँ ॥६॥

सती हिन्दू नारी, पर पुरुष को बन्धु समझे,
मदान्धों ने लूटा, धवल पति को हाय, उनके।
गिरीं कूपों में, वे, तब अरि करों से बच सकीं,
गृहों से वे भागीं, अतुल धन की त्याग ममता ॥७॥

कुत्याचारों का, जिस क्षण समाचार पहुँचा,
जगी हिंसा ज्वाला, अति अखिल हिन्दू-हृदय में।
महात्मा गांधी जी, उस समय होते यदि नहीं,
न जाने क्या होता, प्रलय मचता राज्य भर में ॥८॥

"अहिंसा की रक्षा, विविध विधि से आज करना,
न सत्ता अस्थायी, फिर अचल होगी समझलो।
सुनाया संदेशा, इस तरह का देश जन को,
चले श्री गांधी जी, दुखित जन के क्लेश हरने ॥९॥

कहा लोगों ने आ "मुनिवर न जाएँ इस घड़ी,
न कूदें ज्वाला में, अति विषम कोपाग्नि जलती ।
अकेले जाना क्या, कुछ उचित है शत्रु जन में,
चलें हिन्दू प्यारे, अब कुचलने दुष्ट जन को ॥१०॥

जहाँ हत्या होती, इस तरह है मूक जन की,
अकेले जाएँ क्या, फिर बच सकेंगे प्रभु भला ।
अरे, रक्षा ही को, कुछ सबल साथी सँग चलें,
बचाएँगे प्यारे, असमय पड़ेगा यदि कहीं" ॥११॥

"सुनो होता क्या है, कुछ भय कहीं वीर जन को,
कभी लेता संगी, सघन बन में सिंह अपना ।
जहाँ ही जाता है, मृग सभय हो शान्त रहते,
बिना सेना के ही, प्रबल बल से है विचरता ॥१२॥

यथा पानी होता, रवि किरण से बर्फ पल में,
अहिंसा द्वारा त्यों, अति कुटिल हिंसा पिघलती ।
नहीं ज्वाला से है, कुछ भय मुझे लेश रम का,
बुझा पानी देता, नित अनल को एक पल में ॥१३॥

गवाँ देते बिच्छू, उरग विष को साधु सँग में,
अहिंसा का जादू, फल शुभ दिखाता अधम में ।
अहिंसा वीरों को, अतुल बल देती सब कहीं,
जहाँ चाहे जाएँ, विचरण करें विश्व भर में ॥१४॥

नहीं मर्यादा का, तिल भर कभी ध्यान जिसको,
नहीं नाड़ी में है, रुधिर बहता उष्ण जिनके ।
नहीं आगे आते, लखकर विरोधी प्रबल वे,
अतः हिंसा होती, अबल पुरुषों से भुवन में ॥१५॥

नहीं विघ्नों को जो, अड़ कर हटाते स्वबल से,
बचाते प्राणों को, तज विमल सिद्धान्त निज जो।
कभी हिंसा होती, कुछ कम नहीं भीरु नर से,
अहिंसा विद्वेषी, बस समझ लो कापुरुष को ॥१६॥

सदा कर्त्तव्यों का, स्मरण रखते व्यक्ति विरले,
वही पूजे जाते, कुटिल नर से जो न डरते।
वही दैवी आभा, मर कर कभी प्राप्त करते,
अहिंसा की शोभा, सतत बढ़ती वीर नर से" ॥१७॥

अकेले गांधी जी, उठकर बढ़े सत्य बल से,
गए नोआखाली, स्वजन दुख को दूर करने।
वहाँ देखा भूखे, नर बिलखते अन्न कण को,
नहीं पाते खाना, दुख सह बिताते दिवस को ॥१८॥

नहीं कोई हिन्दू, अभय पथ में दीख पड़ता,
रुका आना-जाना, निशि-दिवस में त्रास भय से।
सुना लोगों ने ज्यों, परम तपशाली निकट में,
बचाने आया है; दुख जलधि से पार करने ॥१९॥

गए गांधी जी के, पद-कमल में शीश रखने,
सुनाने पीड़ा को, सहन करना था पड़ रहा।
अभागे प्राणी था, व्यथित मन से अश्रु जल से,
विलापों के द्वारा, निज दुख सुनाने तब लगे ॥२०॥

(मालिनी)

निज करुण कहानी, एक दीना सुनाने,
जिस समय लगी है, अश्रु के बिन्दुओं से।
चर अचर विमोहे, मर्ति भी रो पड़ी थी,
प्रिय अतिथि महात्मा, ने कहा व्यग्र होते ॥२१॥

"तुम विलख रही क्यों, बात सारी सुनाओ,
दुख कम अब होगा, आ गया मैं यहाँ हूँ।
'दुख कम' सुनते ही, प्राण जागा स्वरों में,
फिर निज सब गाथा, को सुनाने लगी थी ॥२२॥

"श्रवण अब करो हे नाथ! मेरी कहानी,
दुखमय मम बीती, हाय सारी जवानी।
भर विविध उमंगों, में पिता के यहाँ से,
निज पति घर आई, व्याह में ही विदा हो ॥२३॥

कुछ समय बिताया, पूर्ण आनन्द से ही,
प्रति दिवस दशों में, बीतता जा रहा था।
श्वसुर फिर मरे हा! सास ने साथ छोड़ा,
बस रह न गया था, अन्य कोई सहारा ॥२४॥

मिलकर हम दोनों, ने, गृहस्थी सँभाली,
पर अतिशय आई, दीनता, भाग्य रूठा।
कर सहन न पाए, भूख की वेदना को,
शिशिर निशि न बीती, नाथ मेरे चले, हा ॥२५॥

दुख-अचल गिरा हा! शीश को तोड़ डाला,
फिर मर कर भी मैं, जी रही क्यों, बताती।
यदि उदर न होता, गर्भ से युक्त बापू,
उस विषम घड़ी में, प्राण को छोड़ देती ॥२६॥

बस दिवस बिताने, मैं लगी धीरता से,
विधि यदि सुत देगा, जीवनाधार होगा।
उस परम विधाता, की दया भी महा है,
सुत ललित अनोखा, पा सुखी हो गई मैं ॥२७॥

लख सुत-मुख मैंने, क्लेश सारे भुलाए,
बन कर शिशु मैं भी, खेलती संग में थी ।
जब तब वह मिट्टी, मुग्ध खाता अकेले,
फिर लख जब देती, फेंक देता उसे था ॥२८॥

जब कुछ हँस देती, हाथ में ले छड़ी को,
वह कुपित उसी से, पीटता भी मुझे था ।
पर वह लगती थी, चोट मीठी निराली,
सहज सुत मनाती, चाव से, चूमती थी ॥२६॥

मधुर अशन को ले, प्रेम से ज्यों खिलाती,
फिर वह उसमें से, ले मुझे भी खिलाता ।
रजमय तन से आ, अंक में बैठता था,
तब मलिन बनाते, भी मुझे था रिझाता ॥३०॥

प्रति दिन शिशु लीला, देखती मोद पाती,
निज दिवस बिताता, जा रही थी क्षणों में ।
पर विधि न सका है, देख मेरी दशा को,
अहह ! पवि गिराया, इन्द्र ने क्रूरता से ॥३१॥

कुटिल मुसलमानों, ने चढ़ाई अभी की,
मम घर पर भी वे, आ गए शीघ्रता से ।
फिर पकड़ मुझे ही, खूब पीटा उन्होंने,
कुछ मुदित बड़े थे, द्रव्य के लूटने को ॥३२॥

जब धन न मिला वे, लाल ले हाय, भागे,
मम शिर चकराया, पुत्र बोला, "अरे माँ"
तन तज सुत को मैं, चाहती थी बचाना,
पर पकड़ मुझे वे, बाँध रक्खे वहाँ थे ॥३३॥

वह शिशु कहता था, "माँ बचाओ, बचाओ,
वह सब मुझको ले, जा रहे हैं कहाँ को।
विलख-विलख मैंने, प्राणियों को पुकारा,
मम धन लुटता है, दौड़ कोई बचा लो ॥३४॥

तृषित नयन से मैं, राह को देखती थी,
पर करुण पुकारों, को, किसी ने सुना क्या ?
तुमुल रव दिशा में, व्याप्त था क्रन्दनों का
न वचन सुनता था, एक भी दूसरे का ॥३५॥

उन अधम नरों से, प्रार्थना की, दया की,
मम शुभ सुत को दो, दीनता देख मेरी।
पर कुटिल उरों में, शील जागा नहीं, हा !
हृदय-सुत चुराया, भिखुणी हा ! बनाया ॥३६॥

कुछ जन कहते हैं, पुत्र मेरा अभी है,
वह अतुल निराला, है बचाया इसी से।
पर विवश किया है, धर्म के त्यागने को,
पर-मत अनुयायी, हो यहाँ ही कहीं है ॥३७॥

गृह पर वह आने, का न पाता बहाना,
शुक सम कर में ही, बैरियों के पड़ा है।
अब परम दया हो, पुत्र मेरा दिला दो,
इस दुख दलिता को, लाल दो, पुण्य ले लो ॥३८॥

हम सब सुनती हैं, आप का नाम भारी,
अनुपम तपशाली, आप को जानती हैं।
कुछ दम किसमें है, बात टाले कभी भी,
यदि विभव न होता, आप आते यहाँ क्यों" ॥३९॥

जब उर भर आया, नेत्र में अश्रु बाढ़े,
फिर रुक न सके वे, पाद प्रक्षालने को।
चरण जलज धोने, अश्रु मानो बढ़े थे,
अतिशय तप वाले, शुभ्र गाँधी व्रती के ॥४०॥

अति करुण कथा से, धीर गाँधी दुखी हो,
सुखद मधुर वाणी, में लगे धैर्य देने।
"प्रिय मम लघु बेटी! शान्ति धारो न रोओ,
चतुर तनय छूटा, शीघ्र ही आ मिलेगा" ॥४१॥

फिर जरठ खड़ा हो, एक संतप्त बोला,
"इस दुखितजरा की, आपदा को विलोको।
मम सब धन लूटा; शत्रुओं ने क्षणों में,
पशु, धन हर दोनों, तोष आया नहीं है ॥४२॥

निरुपम दुहिता को, छीन वे ले गए हा!
प्रियवर सुत मारे, जो बचाने बढ़े थे।
मम तन पर भारी, घात ऐसा किया था,
विधि वश बच पाया, आप को आज देखा ॥४३॥

प्रिय सुत बचते क्या, क्लेश को भोगता मैं,
इस दलित दशा में, आज होते सहारा।
पर सुख न लिखा था, भाग्य में, दीन-बन्धो!
दुख सह कर पाला, स्वर्गवासी बने वे ॥४४॥

इस समय अभी भी, जी रहा क्यों न जानूं,
प्रिय सुत सँग मेरे, प्राण छूटे नहीं क्यों।
मुझ पर करुणा की, दृष्टि डालो इसी से,
प्रिय निज दुहिता को, अन्त में पा सकूं मैं" ॥४५॥

वह कथन न पूरा, हो सका बीच में ही,
नवयुवक व्यथा को, रो सुनाने लगा था।
"कुछ कर न सका मैं, आँख के देखते ही,
प्रिय बहन, सुभार्या, को हरे दुष्ट वैरी" ॥४६॥

यह सुन कर गाँधी, ने कहा खिन्न होते,
"दुख विकल सभी हैं, देखता नेत्र से हूँ।
पर बल रहते हा! क्यों खड़े हो दिखाते,
निज शुभ भगनी को, खो, मगे क्यों यहाँ से ॥४७॥

तुम मर यदि जाते, हानि कोई नहीं थी,
पर अधम नरों को, मारते प्राण देते।
इस तरह बढ़ाते, नाम माता-पिता का,
तुम बिसुपुर जाते, मान पाते वहाँ भी ॥४८॥

समुचित मिलता हा! पाठ अन्यायियों को,
कुछ मर यदि जाते, वे न हिंसा बढ़ाते।
भग कर रिपुओं को, साहसी है बनाया,
सब पर अघ का है, भार जो भाग आए ॥४६॥

पर समय नहीं है, जो हुआ भूल जाओ,
मिल कर सब साथी, शक्ति खोई जगाओ।
अब धन जिसका जो, खो गया, पा सकोगे,
मम कथन अभी जो, मानते ही चलोगे" ॥५०॥

प्रति घर गुरु गाँधी, जा मिले वासियों से,
सब पद-कमलों में, आ झुकाए शिरों को।
सकल मुसलमानों, से मिले त्रस्त हिन्दू,
यह विदित न होता, वैर क्या है कभी का ॥५१॥

बढ़ कर मिलते थे, कण्ठ से कण्ठ दोनों,
परम मिलन गाँधी, मुग्ध हो देखते थे।
सकल धन दिलाया, हिन्दुओं को सभी से,
प्रिय जन; ललनाएँ, लौट आईं घरों को ।।५२।।

निज-निज दुख भूले, प्रेम छाया सभी में,
परम अतुल आई, शान्ति दोनों दलों में।
पर मर कर जो थे, स्वर्गवासी हुए, हा!
अहह! फिर न आए लौट भावी दिनों में ।।५३।।

अखिल मुसलमानों, को, रहा खेद भारी,
उन सुरपुर बासी, को न लौटा सके वे।
फिर समुद उन्होंने, ही बनाया घरों को,
विधि बशजिनकोथा, हा! गिराया, जलाया ।५४।

सब जन-उर में थी, भक्ति गाँधी सुधी की,
सकल दश दिशाएँ, गूँजती कीर्ति से थीं।
प्रति वर नर नारी, को अहिंसा सिखाई,
तज कर सब हिंसा, वे बने सत्य-कामी ।।५५।।

उस समय समस्या, आ पड़ी घोर ऐसी,
प्रिय वर नेहरू नें, शीघ्र दिल्ली बुलाया।
फिर रुक न सके वे, त्याग नारी-नरों को,
अति सुभग घड़ी में, लौट आए वहाँ से ।।५६।।

—

अष्टदश सर्ग

(लक्ष्य प्राप्ति)

१५ अगस्त सन् १९४७ ई०

वसंत तिलका

क्यों आज सर्व दिशि में अति सौख्य छाया,
क्यों आज है अनिल में नव शांति आयी।
क्यों आज है गगन में द्विज गान होता,
क्यों आज है विपिन में अभिराम जागा ॥१॥

क्यों है सभी नगर में सुख की न सीमा,
क्यों राज मार्ग बहु तोरण से सजे हैं।
क्यों ग्राम्य नारि-नर में नव शक्ति आयी,
दीपावली किस लिए जन हैं मनाते ॥२॥

प्यारा अगस्त इतिहास नया लिखेगा,
अंग्रेज आज इँगलैंड चले गए हैं।
स्वाधीनता विगत आज मिली हुई है,
उत्साह आज इससे निज देश में है ॥३॥

राणा प्रताप वर वीर सुधी शिवा की,
लक्ष्मी व्रती भगत सिंह महा बली की।
श्री गोखले, तिलक देश पुजारियों की,
पूरी हुईं सकल मानस कामनाएँ ॥४॥

स्वाधीनता दिवस को जन हैं मनाते,
हैं हो रहो इस लिए महती सभाएँ।
आया स्वराज्य बलिदान हुए सहस्रों,
श्रद्धाञ्जली सजल व्यक्ति समोद देते ॥५॥

दिल्ली तथापि बहु मोद मना रही है,
श्री मातृ-भूमि जन की प्रिय राजधानी।
शोभा अलौकिक वहाँ कमनीय छाई,
वाणी बखान जिसका कर मुग्ध होती ॥६॥

प्यारे जवाहर, पटेल अपूर्व नेता,
सानन्द देव सम शोभित हो रहे हैं।
बापू समीप जन जाकर नम्रता से,
देते अनेक विधि से उनको बधाई ॥७॥

"हे राष्ट्र के जनक, हे तप सौम्य मूर्ते,
हे कर्णधार, पटु नाविक, दीन प्यारे।
स्वाधीन आज तुमने हमको किया है
दें धन्यवाद किस भाँति अशक्ति वाणी ॥८॥

अत्यन्त घोर दुख को हम भोगते थे,
सम्मान-हीन जग में हम जी रहे थे।
खोया स्वराज फिर से तुमने दिलाया,
संसार में पतित थे सहसा उठाया ॥९॥

आजानबाहु, पतिताधम को उठाया,
हो प्रेम मग्न सब को उर से लगाया।
दें धन्यवाद किस भाँति न जान पाते
नेत्राम्बु से चरणधो, शिर को झुकाते ॥१०॥

गांधी प्रसन्न मन से सब को रिझाते,
थे इन्द्र तुल्य अति शोभित व्यक्तियों में।
गंभीर हो फिर कहा नर-नारियों से,
"दो धन्यवाद मुझको न कदापि मित्रो ॥११॥

त्यागी अपार धन राशि सदा जिन्होंने,
सर्वस्व अर्पित किया निज देश को था।
स्वातंत्र्य हेतु बलिदान हुए इन्होंने
दो धन्यवाद उनको मत भूल जाओ ॥१२॥

माना नहीं ब्रुटिश का भय लेश भी था,
फांसी मिली यदि कहीं उपहार माना।
श्रद्धाञ्जली सजल दो उन त्यागियों को,
क्या भूलना उचित है उन व्यक्तियों को ॥१३॥

जाओ समाधि रज को शिर से लगाओ,
दे प्राण दान अपना चिर सुप्त जो हैं।
दो दीपदान सँग में शुभ पुष्प ले ले
प्रेमाश्रु से जलन को उनकी बुझाओ ॥१४॥

स्वाधीनता-समर में अरि ने गिराये,
अत्यन्त ही कुपित हो गृह वासियों के।
दीपावली उन गिरे घर में जलाओ,
हैं व्यक्ति देवपुर में जिनके कमी से ॥१५॥

दो धन्यवाद उनको जय गान द्वारा,
होंगे महा मुदित वे पर लोक में भी।
हैं पूर्ण आज उनके मन की उमंगें,
अत्यन्त हर्ष उनको इस हेतु होगा ॥१६॥

स्वर्गीय वीर नर को वर नारियों को,
श्री गोखले, तिलक को गुरु जो हमारे।
दो धन्यवाद उनको मन में न भूलो,
स्वाधीनता विटप था जिनका लगाया ॥१७॥

पंजाब के दमन में मृत जो हुए हैं,
आबाल वृद्ध महिला युवकादि प्यारे।
दो धन्यवाद जिनके बलिदान से ही,
हैं आज मुक्त निज भारत के निवासी ॥१८॥

दो धन्यवाद वलिया जन को जिन्होंने,
पिस्तौल से हृदय को सतधा बनाया।
अंग्रेज ने विपुल ग्राम वहाँ जलाए,
प्राणी सभी विवश हो जिनमें जले थे ॥१६॥

संपूर्ण त्याग सुख को, ब न नित्य बन्दी,
जो भोगते पुलिस की अति क्रूरता को।
जो तोड़ते नियम को सरकार के थे,
दो धन्यवाद उनको शतवार मित्रो ॥२०॥

सत्याग्रही अभय जो धरना दिए थे,
रोके तथा विपणि में पट थे विदेशी।
जो जेल दण्ड इसमें नित भोगते थे,
दो धन्यवाद उर से उन प्राणियों को ॥२१॥

स्वातंत्र्य युद्ध-तप में रत जो सदा थे,
जो राजकीय पद वञ्चित भी हुए थे।
अत्यन्त कष्ट जिनके जन झेलते थे;
दो धन्यवाद उनको शुभ पर्व में भी।।२२।।

हैं पूजनीय अति वीर अनूप नेता,
सेवा अपार निज देश निमित्त की है।
संक्षिप्त आज उनके इतिहास द्वारा
मैं धन्यवाद उर से अब दे रहा हूँ।।२३।।

नेता सुभाष गुण-सागर धीर ज्ञानी,
जन्मे पुरी कटक में अति पुण्य शाली।
आते रहे प्रथम ही सहपाठियों में,
उत्तीर्ण की सिविल सर्विस की परीक्षा।।२४।।

स्वाधीनता अधिक थी प्रिय बाल्य से ही,
सन्यास ले पृथक बंधन से हुए थे।
थी दासता न रुचती उनको कभी भी
सर्वोच्च राजपद को अविलम्ब त्यागा।।२५।।

कांग्रेस के शुभ सभापति प्रान्त के थे,
सस्नेह देश-जनता वश वर्तिनी थी।
अंग्रेज शासक सदा भयभीत होते,
वन्दी बना कर रखा दूत मांडले में।।२६।।

सत्कीर्ति थी, वदन में अति शक्ति, मेधा,
था उग्रभाव उनमें प्रतिकूल मेरे।
विश्वास भी न उनको मम नीति में था,
स्वाधीनतार्थ तब जर्मन से मिले थे।।२७।।

जापान में पहुँच शीघ्र स्वकार्य साधा,
की मित्रता ब्रुटिश के प्रतिद्वन्दियों से ।
भूपाल अंडमन के फिर हो गए वे
'आजाद हिन्द, निज सैन्य वहाँ बनाया ॥२८॥

तत्काल ही ब्रुटिश से निज युद्ध ठाना,
आसाम में पहुँचते कुछ ग्राम जीते ।
राष्ट्रीय केतु अपना सुख से, उड़ाया
पुरुषार्थ के अतुल गौरव को दिखाया ॥२९॥

दो धन्यवाद सब भारत केसरी को,
संदर्प आज हमको उनसे मिला है ।
ऐसे महापुरुष से यह पर्व आया
श्रद्धांजली, हृदय से उनको चढ़ाओ ॥३०॥

[शार्दूल विक्रीडित]

श्री राजेन्द्र प्रसाद के जनक थे, सुश्री महादेव जी,
जन्मे सारण प्रान्त मध्य, एम० ए०, उत्तीर्ण बंगाल से ।
हो सत्विज्ञ वहीं वकालत किया, अत्यन्त पाण्डित्य से,
आए वे पटना पुनः निज किया, उद्योग सन्मान से ॥३१॥

ईस्वी सत्रह में मिले जब मुझे, पाया उन्हें साहसी,
मैं चम्पारन कार्य में जब लगा, सत्याग्रही वे बने ।
फैली कीर्ति वहाँ अपूर्व गति से, नेता बने प्रान्त के,
वे कांग्रेस प्रधान ही फिर रहे, प्रान्तीय वर्षों कई ॥३२॥

ईस्वी चौतिस में हुए स्वगुण से, अध्यक्ष कांग्रेस के,
सेवा की मन से शरीर-धन से, सद्भक्ति से देश की ।
सत्कर्ता निज हैं महासमिति के, प्रारम्भ से नित्यशः
त्यागी है न दया तथा सरलता, आपत्ति में भी कभी ॥३३॥

[द्रुत विलम्बित]

अखिल भारत के नर-रत्न हैं,
अभय जेल गए जनके लिए !
विभव का कुछ मोह किया नहीं,
अतुल कष्ट सहा पर स्वार्थ में ॥३४॥

जब बनी स्वविधान सभा यहाँ
तब सभापति शीघ्र चुने गए ।
प्रखर बुद्धि लगी उस कार्य में,
सफलता जिसमें अनिवार्य है ॥३५॥

नियम पालन सैनिक वीर का,
सचिव का अति उत्तम ज्ञान है ।
परम है तप पावन साधु का,
विपुल दान भरा जल-वाह का ॥३६॥

जब मिला उनका सहयोग है,
तब स्वराज्य मिला यह जान लो
विविध भाँति सदा वह पूज्य हैं
विनत मस्तक हो उन से सभी ॥३७॥

तप महाव्रत के अवतार हैं,
स्वशिर उन्नत वीर पटेल से ।
विमल जन्म लिया गुजरात में,
शरद में पचहत्तर के, अहो ॥३८॥

वह वकील बने अति भाग्य से,
न उपमान मिला उनका कहीं ।
चकित हो कर मानव देखने,
लग गये उनकी क्षमता महा ॥३९॥

असहयोग छिड़ा जब बीस में,
तब महा सहयोग दिया मुझे।
कुछ न मोह हुआ निज आय का,
सतत देश सुधारक हो गये ॥४०॥

जन नहीं 'कर' दें सरकार को,
तुमुल युद्ध छिड़ा इस हेतु ही।
बन गये 'सरदार' समाज के,
परम ख्याति मिली तब से उन्हें ॥४१॥

नमक के हित जेल गये पुनः,
नियम भंग किया अति मोद से।
वह सभापति भी इकतीस में,
अखिल कांग्रेस के तब हो गये ॥४२॥

समर घोर बयालिस में हुआ,
गमन श्वेत करें इँगलैंड को।
समिति के वह मान्य सदस्य थे,
तुरत बन्द हुए तब जेल में ॥४३॥

'पुरुष लौह' उन्हें कहते सभी,
दृढ़ सदा रहते निज लक्ष्य में।
कठिनता मृदु है बनती कभी,
कुछ नहीं रखते भय काल का ॥४४॥

प्रखर कूटि विशारद विज्ञ हैं,
अचल हैं गिरि-सा रिपु के लिए।
विजय में उनका अधिकार है,
स्वदल के अति मुख्य महारथी ॥४५॥

अखिल भारत के सब अंग को;
द्रुत मिला कर सुन्दर बुद्धि से ।
प्रबल राष्ट्र बना कर देश को,
वह दिखा सकते जग को कमी ॥४६॥

सब करो अभिनन्दन वीर का,
विमल पर्व मिला उनसे हमें ।
परम कार्य कदापि न एक से,
सफल हो सकता कटु सत्य है ॥४७॥

विमल लाल मिला अनमोल है,
उदित भाग्य हुआ जब देश का ।
अवनि तीर्थ शिरोमणि में हुआ,
अहह, जन्म जवाहर लाल का ॥४८॥

परम रूप मिला वर काम-सा,
विमल ज्ञान मिला गणनाथ-सा ।
लख अलौकिकता जन मुग्ध थे,
शिशु जवाहर में सब भाँति ही ॥४६॥

अधिक शिक्षित हो इँगलैंड से,
'भवन' को अपने जब आ गये
जनक तुल्य विशिष्ट वकील हों,
प्रबल थी उर में वर कामना ॥५०॥

जब विवाहित सोलह में हुये,
विमल रूप वती कमला मिली ।
रह गयी न कमी कुछ गेह में,
जब हुई कमला अनुगामिनी ॥५१॥

युगल दम्पति की कल कीर्ति का,
अकथ वर्णन है सब भाँति ही।
पुरुष पुङ्गव से कमला मिली
भुवन में उसका उपमान क्या ॥५२॥

असहयोग किया सरकार से,
विगत मोह हुये मम संग में।
मुदित लोक हुए लख वीरता,
अकथनीय अलौकिक धीरता ॥५३॥

अखिल भारत में यश छा गया,
जन लगे करने गुण-गान को।
ललित भाषण को सुन स्वागते,
विभव को सब देश निमित्त थे ॥५४॥

प्रथम गएय हुए निज संघ के,
वह सभापति शीघ्र चुने गए।
वचन से कहते निज लक्ष्य को,
तुरत पूर्ण सभी करते उसे ॥५५॥

सकल संकट को निज देश के,
हरण ही करते अति शांति से।
जनक को, जननी निजदार को,
गमन-शील किया शुभ-मार्ग में ॥५६॥

जनक जेल गये तज सम्पदा,
पुलिस घात सहीं जननी, प्रिया।
विपुल कष्ट मिले कुल-व्यक्ति को,
विगत धैर्य हुआ न कभी, अहो ॥५७॥

इस लिये जनता निज देश की,
अतुल भक्त बनी वर वीर की।
अखिल भारत के वह प्राण हैं
निरत उद्भव में जन-पूथ के ॥५८॥

वह निरन्तर जेल गए जभी,
सहज माँग हुई निज देश की।
न भयभीत हुए रिपु-अस्त्र से,
विजय के पथ में बढ़ते गये ॥५६॥

यह स्वराज्य मिला तप त्याग से,
सतत यत्न जवाहर लाल के।
इस लिये नत मस्तक हो सभी,
परम धीर यती, उस वीर से ॥६०॥

अगम नीति विशारद विश्व में,
भुवन में उनका अति मान है।
सब चलो उनके पद-चिह्न से,
विजय निश्चित है सब काल में ॥६१॥

सचिव भारत के वर विज्ञ हैं,
चतुर नायक हैं मन युद्ध के।
अभय शासन में उनके सभी,
बहुत धन्य सदा जन वर्ग से ॥६२॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

श्री आज़ाद दयालु ने सतत की, सेवा महा देश की,
जाते जेल सदा रहे, समुद वे, आह्वान होता जभी!
शोभा हैं निज देश की इसलिए, सम्मान भारी उन्हें
दो ऐसे शुभ काल में हृदय से, स्वाधीनता-सूर्य को ॥६३॥

देवी धन्य सरोजिनी स्वजन की, सन्मूर्ति श्रद्धा बनीं,
बीरों-सी रणभूमि में नित रहीं, दुर्गा बनी नायङ्क।
श्रद्धायुक्त तपस्विनी बन रहीं सम्मोह को त्यागते,
देवी भी कुछ न्यून हैं न नर से, पूज्या सदा अग्रणी ।।६४।।

लक्ष्मी पंडित शालिनी विजयिनी, मोती-सुता भूषिता,
छोड़ा मोह समस्त अर्थ-सुख का, कूदीं स्वदेशाग्नि में।
छाई कीर्ति अनूप विश्व भर में, सत्पूज्य नारी बनीं
क्यों भारी सुख आज हो न हमको, देवी-कथा गा मदा ।।६५।।

हैं अन्यान्य अनेक देश-गरिमा, सद्वीरयाँ देश में,
त्यागीं देश निमित्त पूर्ण सुख को, स्वाधीनता के लिए।
मित्रो, दो सब धन्यवाद उनको, श्रद्धा तथा प्रेम से,
पाते हैं उनसे अपार यश को, भ्रखण्ड से आज भी ।।६६।।

खाँ गफ्फार सुधी, महामहिम हैं, योद्धा महा सैन्य के,
हैं आचार्य अनेक सर्व विजयी, 'संपूर्ण-आनन्द' से।
नेता-मंडित पंत, टंडन तथी, बन्दी हुए जेल में,
प्यारे दो, मिल धन्यवाद उनको, ऐसे महा पर्व में ।।६७।।

मोतीलाल, सुमालवीय, गुरु जी, मुंशी, मनस्वी सुधी,
नाना क्लेश सहे स्वदेश हित में त्यागे नहीं लक्ष्य को।
आया है नव राज आज उनसे, देखो सभी चित्त में,
हर्षोत्फुल्ल स्वधन्यवाद शुभ दो, सेनानियों को सभी ।।६८।।

श्री पट्टाभि, विधान चन्द्र सुतपी, भावे विनोबा सुधी।
राजा जी, नर केसरी प्रभृति हैं, झेले कठोरापदा।
ज्ञानी केस्कर राजनीति-पटु हैं, योद्धा महा सैन्य के,
जाओ दो सब धन्यवाद उनको, स्वाधीनता है मिली ।।६९।।

[द्रुत विलम्बित]

जयप्रकाश, नरेन्द्र, प्रभावती,
सुहृद केशव, चन्द्रवली तथा।
विपुल 'देव', अशोक कुमार भी,
समुद त्याग किए घन, शेष हैं ॥७०॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

भोगे हैं कितने 'अनन्त' दुख को स्वातंत्र्य संग्राम में,
सूची दे सकता नहीं सकल की, नामावली है बड़ी।
सुप्रेमाश्रु गिरा सभी मुदित हो, गाओ चरित्रावली,
पूरा उत्सव आज का सफल हो, स्वाधीनता-हर्ष में ॥७१॥

ऐकोनविंशति सर्ग

(शरणार्थी समस्या)

द्रुत विलम्बित

भुवन में धनवान मनुष्य भी
विभव खो कर है दुख भोगता ।
नित अजीर्ण रहा करता जिसे,
कण निमित्त दुखी रहता वही ॥१॥

अति अमूल्य मनोहर वस्त्र की,
भवन में जिनके गणना नहीं ।
वसन से च्युत होकर दीन हो
विकल है रहता जग में कभी ॥२॥

सहज कोमलता जिसमें भरी,
श्रम नहीं करता कर से कभी ।
वह कुली बनता निज भाग्य से,
विधि विधान अतीव विचित्र है ॥३॥

अतुल गर्व समन्वित व्यक्ति भी,
पतित हो सहता अपमान को।
वदन दर्शन दुर्लभ है कभी,
घृणित है बनता जग से वही ।।४।।

अति विशाल महीधर शृङ्ग भी
जलधि के तल में छिपता कभी।
अगम सिन्धु जहाँ लहरा रहा,
कल वहीं मरु-भूमि विराजती ।।५।।

कुसुम राजित सुन्दर वाटिका,
सहज निर्जन है बनती कभी।
कुटज कंटक हैं उगते वहाँ,
न जग में रहती गति एक सी ।।६।।

सुभग है सरिता बहती जहाँ,
रज वहाँ उड़ती जल के बिना।
नगर शोभित है जिस प्रान्त में,
विपिन घोर वहीं उगता कभी ।।७।।

विविध वाहन हैं जिन भूप के,
रथ विहीन कभी चलते नहीं।
विभव हीन वही बनते जभी,
न थकते पथ में चलते हुए ।।८।।

सपरिवार असीम उमंग में,
विभव थे कल जो अति शोभते।
स्वजन हीन वही अब गेह में,
दुखित होकर जीवन काटते ।।९।।

जनक थे कल जो सुत चार के,
तनय खो कर चिन्तित आज वे।
विधि रहा जिनके अनुकूल ही,
अब वही विधु से दुख पा रहे ॥१०॥

समय एक समान मनुष्य का,
रह कभी सकता न समाज में।
दिवस में रवि की कितनी दशा,
बदलती रहती नित देखिए ॥११॥

अहह ! दैव-विधान टला नहीं
प्रखर चक्र चला जगदीश का।
विमल मानवता कुचली गई,
विषम दानवता-कर से यहाँ ॥१२॥

जब विभाजित भारत हो गया,
सफल शत्रु हुए निज लक्ष्य में।
उभय राज्य बनें जब देश में,
विषम-बेलि लगी दुख की मनो ॥१३॥

परम पावन राष्ट्र पिता कभी,
हृदय से न विभाजन चाहते।
पुरुष की पर सुन्दर भावना,
कब फली विधि सम्मुख लोक में ॥१४॥

उस अहिंसक के रहते हुए,
विमल भारत खंडित हो गया।
सहज शक्ति मिली जब 'पाक को,
बह मदान्ध हुआ अति गर्व में ॥१५॥

द्विरद तुल्य भयंकर कार्य को,
बढ़ लगा करने मद मत्त हो।
फल समन्वित पुष्पित वृक्ष से,
कर दिया च्युत नन्दन देश को ॥१६॥

अटल निश्चय था उसने किया,
सकल वंशज राम व्रजेश के।
पृथक हों द्रुत पाक प्रदेश से,
परम मुस्लिम राज्य बने वहाँ ॥१७॥

अरि अचानक टूट पड़े वहाँ,
प्रखर आयुध लेकर रात्रि में।
अज समान लगे तब काटने,
विमल बांधव थे जब सो रहे ॥१८॥

अति भयंकर अग्नि लगी वहाँ,
गृह लगे जलने सब आर्य के।
कुछ पता उनको इसका न था,
सकल थे सुख से तब सो रहे ॥१९॥

जग गए जन भीषण घोष से,
पर बने कर्त्तव्य विमूढ़ थे।
शिर विहीन हुए झट देखते,
कर सके निज रक्षण वे नहीं ॥२०॥

अरि समक्ष पड़ा हत-भाग्य जो,
यमपुरी पहुँचा लव लेश में।
शिशु, युवा, युवती, अति वृद्ध भी
बच सके न तभी प्रलयाग्नि से ॥२१॥

विषम काल उपस्थित देखते,
सभय सत्वर थे नर भागते ।
स्वधन की, कुल की ममता न थी,
अहह ! थी अपनी अपनी पड़ी ॥२२॥

रुधिर था बहता सब ओर ही,
नगर की गलियाँ शव से पटीं ।
अधमरे बहु घायल व्यक्ति भी,
विवश हो पद से कुचले गए ॥२३॥

कुछ न था जन को तब सूझता
सकल भाँति हरी वर बुद्धि थी ।
कुछ बढ़े अरि से लड़ने वहाँ,
यम पुरी पहुँचा उनको, मरे ॥२४॥

बच सके जितने अरि यूथ से,
हृदय आतुर था उनका महा !
श्रवण हो सकता न विपत्ति का,
सहन शक्ति न पाठक वृन्द में ॥२५॥

जनक पुत्र विहीन हुए कई,
हृदय कातर था उनका बड़ा ।
निधन है खलता किसको नहीं,
हृदय का टुकड़ा सुत सर्वथा ॥२६॥

श्रवण कारण थे निज तात के,
निधन का इतिहास प्रसिद्ध है ।
तनय राम गए वन को जभी,
बच सके अवधेश निदान क्या ॥२७॥

शिशु अनाथ बने तज तात को,
बिलखते सब थे करुणा भरे।
सब चराचर को अति दुःख था,
रुदन चित्त विदारक था वहाँ ॥२८॥

परम रूपवती विधवा दुखी,
सहज सिंदुर था उनका धुला।
नयन सम्मुख था तम छा रहा,
पुरुष निश्चित जीवन प्राण है ॥२९॥

यह शरीर कभी तज प्राण को,
रह नहीं सकता पल भी कहीं।
जल विहीन नदी कब शोभती,
सरस जीवन का अति मूल्य है ॥३०॥

पुरुष के कर से रिपु ले गए,
सहचरी रमणी अति दुःख दे।
विवश लज्जित थे, निज धाम से,
चल पड़े नर श्री-हत जीव ले ॥३१॥

विकल होकर उत्तम बंधु को,
कुछ चले भगिनी तज दीन हो।
अब नहीं वह सौख्य, विनोद था,
दुखित जीवन था उनका बड़ा ॥३२॥

अतुल राशि छुटी धन की वहाँ
विपुल जीवन था जिसमें लगा।
बस बता सकता अब कौन है
धन विहीन हुए कितने वहाँ ॥३३॥

बन अकिंचन भोजन के बिना
विवश थे बढ़ते किस ओर को।
अहह! रो पड़ती करुणा वहाँ,
निरखते उनकी दयनीयता ॥३४॥

सतत देकर भोजन दीन को,
हरण जो करते पर की क्षुधा।
अब वही दिखला कर दीनता,
उदर थे भरते पर अन्न से ॥३५॥

थक गए कितने जन पन्थ में,
अधिक थी जिनमें सुकुमारता।
जनक से कहते मृदु बाल थे
"पद नहीं उठते अब मार्ग में ॥३६॥

बहुत भूख लगी चलना हमें,
रह गया कितना अब शेष है।
किस लिए न दया करते पिता,
कुछ हुआ शिशु से अपराध क्या ॥३७॥

अब नहीं मिलती नित चाय है,
कुपित हैं जननी हम से कहीं।
वह न है अब भोजन दे रही,
समय से, कहते, कितना उसे ॥३८॥

अब मँगाकर मोटर में चढ़ा,
तनय को अपने प्रिय ले चलें।
निरखिए इन कोमल अंग में,
बल नहीं कुछ भी अब शेष है" ॥३९॥

व्यथित हो कर पुत्र-विलाप को,
विवश हो सुनते असहाय थे।
उर विदीर्ण हुआ सब भाँति ही,
वचन भी मुख से कढ़ते न थे ॥४०॥

रुदन थे करते, नयनाम्बु से,
बन गई सरिता उस काल थी।
सकल मग्न हुए उन में स्वयं,
चतुर नाविक था उनमें नहीं ॥४१॥

विलपते बढ़ते निज पंथ में,
सब निरंतर थे किस ओर को।
यह पता उन को कुछ था नहीं,
गमन का उनके कब अन्त है ॥४२॥

शुभ सहायक थे जन चाहते,
दुख जलाशय से तब काढ़ले।
मिल गया उनको अति भाग्य से,
बहुत देर लगी न उन्हें तभी ॥४३॥

जब कभी पड़ता दुख दीन को,
परम व्यक्ति सहायक हो सदा।
दलन है करता सब त्रास को,
विभव है भरता जन वर्ग में ॥४४॥

दुख हरे हर ने सब देव के,
स्वजन कष्ट हरे नर,सिंह हैं।
बस सहायक मोहन दास थे,
बन गए जन के उस काल में ॥४५॥

सब वहीं पहुँचे दुख-सिन्धु ले,
बन अगस्त्य पिया पल मात्र में।
अनल आतप को नर-नारि के,
तुरत पान किया वर कृष्ण-सा ॥४६॥

जन सुना कर हा! करुणामयी,
सब कथा अपनी कहने लगे।
नयन अम्बु गिरा करुणेश नें,
स्वजन दुःख-समुद्र सुखा दिया ॥४७॥

निधन को अपने प्रिय के सभी,
बहुत कातर हो कहने लगे।
बचन अमृत से इस भाँति वे,
स्वजन-सर्व-व्यथा हरने लगे ॥४८॥

शुभ शरीर सदैव अनित्य है,
व्यथित हो न कभी इसके लिए।
अमरता जग में किसको मिली,
विवश हो तजते जन देह को ॥४६॥

फिर यहाँ मरता कब कौन है,
सतत जीव अभेद्य, अमर्त्य है।
अभय है, चिर है, बस सत्य है,
जल नहीं सकता खर अग्नि में ॥५०॥

कट नहीं सकता वह अस्त्र से,
जल, गला सकता उसको नहीं।
अनिल है न उड़ा सकता कभी,
समझ लो वह ईश्वर अंश है ॥५१॥

भुवन में पड़ता जब जीव है,
फिर नहीं रहता वर ज्ञान है।
वह भुला कर आत्मिक रूप को,
सतत दुःख सहा करता यहाँ ॥५२॥

अमल हो कर कल्मष युक्त हो,
वह फिरा करता सब योनि में।
जब उसे मिलता वर ज्ञान है,
वह पुनः बनता प्रभु रूप ही ॥५३॥

स्ववश में रहता जगदीश है,
पर नहीं वह जीव स्वतंत्र है।
भुवन का प्रभु ईश्वर एक है,
अखिल में पर जीव अनेक हैं ॥५४॥

इस लिए अपने जन के लिए,
दुख करो न वृथा अब से सुनो।
अमर भी मरता जग में कभी,
बदन को अपने बस त्यागता ॥५५॥

बसन जीर्ण यथा तज मोद से,
पहनते नर हैं नव वस्त्र को।
बस उसी विधि जीव शरीर को,
तज सहर्ष नया वपु धारता ॥५६॥

भुवन में सुत-बंधु अनेक जो,
सहज बंधन के सब साज हैं
अबुध हो जन स्वार्थ निमित्त ही,
असहनीय सदा दुख भोगते ॥५७॥

बुध इन्हें जग बंधन मानते
तज सुखी बनते सब भाँति हैं।
समझ लो यह बात यथार्थ है,
दुख भुला कर धैर्य धरो सभी ।।५८।।

अधिक तुष्ट हुए उपदेश से,
परम ज्ञान मिला सब को वहाँ।
अकथ दर्शन पा नर-देव का,
असह दुःख दुरे पल मात्र में ।।५६।।

[शार्दूल विक्रीडित]

गांधी ने निज पूर्ण देश भर के, मंत्री सुधी से कहा,
हो आयोजन भोज्य का भवन का, दुःखार्तियों के लिए।
देरी हो न कदापि लेश भर की, रक्खो इन्हें प्रेम से,
दो आराम समस्त प्राणि जन को, भूलें सभी क्लेश को ।।६०।।

——

विंशति सर्ग

(दिल्ली अनशन)

द्रुत विलम्वित

वसन भोजन का अति कष्ट था,
अखिल भारतवर्ष-मनुष्य को।
सकल ताप-निवारण हेतु ही,
विकल थे जब राष्ट्र-पिता यहाँ ॥१॥

तब अचानक पश्चिम से यहाँ,
दलित दुःखित कातर आ गए।
बस विषाद मही पर छा गया
अतुल आकुल भारत हो गया ॥२॥

विभवहीन, मलीन महा दुखी,
भवन में पहुँचे तब लक्ष थे।
स्वजन पीड़ित थे जब राष्ट्र के,
विपुल संकट में दिन काटते ॥३॥

वह महत्तम भीषण काल था,
अधिक व्यग्र हुए जन देश के।
सह अतीव विपत्ति स्वयं सभी,
दुख, दुखीजन के हरने लगे ॥४॥

अशन में कर दी अपने कमी,
पहनने कपड़े कम ही लगे।
भवन का कुछ अंश दिया, स्वयं,
बहुत सीमित वे रहने लगे ॥५॥

विविध भाँति अपार विपत्ति को,
समुद भोग लिया पर स्वार्थ में।
अतिथि को सुख दे कर, सर्वथा,
सब, अहो, कितना दुख हैं सहे ॥६॥

स्वजन के अतिरिक्त वहाँ तभी,
अधिक योग दिया सरकार ने।
बन गये नव धाम अनेक थे,
अतिथि के प्रति सत्वर देश में ॥७॥

घन अतीव लगा इस कार्य में,
अखिल शक्ति लगी सरकार की।
अतिथि को सुख हो जिस भाँति ही,
पुरुष उत्सुक हो करते वही ॥८॥

रुक विकास गया अपना तभी,
जटिलता नित ही बढ़ती रही।
अरि लगे मन में निज सोचने
सफल भारत हो सकता नहीं ॥९॥

पर अलौकिक नैतिक शक्ति का,
विदित ज्ञान न था पर राष्ट्र को।
दलन संकट को सब ने किया,
विवुध राष्ट्र-पिता सहयोग से ॥१०॥

भवन-उद्यम-युक्त हुये सभी,
वसन भोजन की न कमी रही।
सहज में निज घोर विषाद को,
वस लगे मन से कुछ भूलने ॥११॥

विवुध राष्ट्र पिता यह जानते,
अनल तप्त कभी छिपता नहीं।
जन भुला सकते न कदापि हैं,
विभव भव्य विशाल अतीत का ॥१२॥

इस लिए वह नित्य सचेत थे,
अतिथि भूल सकें निज कष्ट को।
हृदय में गुरुता, नव शांति हो,
सुखद जीवन हो उनका पुनः ॥१३॥

वह निरन्तर दैनिक प्रार्थना,
अखिल ईश्वर की करते हुए।
नित सभा करते प्रिय मित्र को,
कुपित आर्त बुला मृदु भाव से ॥१४॥

नर-चरित्र नितान्त विशुद्ध हो,
विनय थे करते इस के लिए।
सदुपदेश सुना जन वर्ग में,
सहज मानवता भरते सदा ॥१५॥

"सब समान चराचर जीव हैं,
पतित, उच्च नहीं उनमें कमी।
सुभग पाठ पढ़ें सहयोग का,
जन सहायक हों पर दुःख में ॥१६॥

विजय में अति हर्षित हों नहीं,
मलिन हों न पराभव में कभी।
विजय और पराभव से परे,
पुरुष पावन हैं इस लोक में ॥१७॥

परम तत्व विशारद हैं वही,
समझते सम हैं सुख दुःख को।
न रखते फल की शुभ कामना,
निरत हैं रहते निज कर्म में ॥१८॥

परम मुक्त मनुष्य स्वकर्म में,
न फल में उसका अधिकार है।
इस लिए मत कर्म विहीन हो,
सतत सत्पथ में बढ़ते रहो ॥१६॥

पुरुष जो करता अपकार है,
स्वजन का अपने अघ कर्म से।
उचित है उसको कर दो क्षमा,
विघु समस्त सदा वह दण्डय है ॥२०॥

सहन शक्ति अलौकिक वस्तु है,
चमकता उससे नर दीप्ति-सा।
दुखित-आह-भयंकर-ताप से,
तुरत है बनता रिपु क्षार-सा ॥२१॥

यदि मिला अरि से कुछ कष्ट है,
फिर भला उसका अपकार क्या।
सतत ही बढ़ती प्रतिशोध से,
विषम अग्नि भयानक वैर की" ॥२२॥

विबुध राष्ट्र पिता उपदेश दे,
व्यथित पीड़ित आगत सिक्ख को।
हृदय से अपने नित चाहते,
दुख भुला कर शांत रहें यहाँ ॥२३॥

विफल था उनका उपदेश भी,
हृदय आहत थे सब सिक्ख के।
नयन सम्मुख सर्व विनाश हो,
फिर भला किसको कब धैर्य हो ॥२४॥

सब रहे कुढ़ते निज दैन्य से,
विवशता, लघुता, अपमान से।
अकथनीय उन्हें उर-ताप था,
विकल उग्र महा करता सदा ॥२५॥

निरखते कुल की असहायता,
चरम कायरता, दयनीयता।
असहनीय गिरी असमर्थता,
कुपित हो उठने क्षण में लगे ॥२६॥

सुलग अग्नि रही जब ताप की,
अहह, था यह सम्भव क्या नहीं।
भभक सत्वर ही पल में वही
प्रलय काण्ड दिखा सकती कभी ॥२७॥

दिवस आ पहुँचा, जब बाढ़ सी,
बढ़ चली सरिता प्रलयाग्नि की।
अरि लगे जलने भुनने तभी,
विषम चक्र चला विधि का पुनः ॥२८॥

मुसलमान कहीं मिलते उन्हें,
यमपुरी पहुँचा कर छोड़ते।
हृदय की करुणा मिट सी गई,
सकल सिक्ख बने यमराज थे ॥२६॥

पहुँच भीषण भैरव कालिका,
रुधिर पान लगे करने सभी।
सद्रुद मुण्ड सुमाल बना बना
पहनते सविलास सुवक्ष में ॥३०॥

सकल वायस, श्वान, शृगाल थे
बहुत उत्सुकता दिखला रहे।
उदर थे भरते, परितुष्ट हो,
परम भाग्य अनूप सराहते ॥३१॥

चतुर सैनिक थे यमराज के,
अधिक उत्सव हर्ष मना रहे।
यमपुरी सुख में अनुरक्त थी,
बन रहा अरि-दण्ड विधान था ॥३२॥

नगर में शव थे मिलते कहीं,
कुचलते उनको पद से रहे।
हृदय शीतल था अति हो रहा,
रुधिर से सब सिक्ख नहा रहे ॥३३॥

कुसुम-अस्थि चढ़ा कर चाव से
रुधिर ले कर दानव-देह से।
स्वजन को मृत शुभ्र तिलाञ्जली,
सजल अर्पित थे करते वहाँ ॥३४॥

हृदय दग्ध लिए पहुँची, अरे,
मुदित हो कर आतुर देवियाँ।
रुधिर से अपने शिर-केश को,
तर किया बन द्वापर द्रौपदी ॥३५॥

भुवन को फिर से दिखला दिया,
बल अभी उनमें अवशेष है।
फल चखा कर भीषण वैर का,
दम लिया करते जिससे सदा ॥३६॥

विकल हो घर से रिपु भागने,
लग गये निज जीव बचा बचा।
पड़ गये असि के जब सामने,
बच सके न, उन्हें यम ले गये ॥३७॥

'बस खुदा अब लो हमको बचा,'
ध्वनि यही सब ओर सुना रही।
पर वहाँ सुनता तब कौन था,
चख रहे फल थे निज कर्म का ॥३८॥

मुसलमान नहीं इस प्रान्त के,
मदद जो करते फिर पाक क्या।
चन कभी सकता इस भूमि में,
कुफल वे उसका तब भोगते ॥३९॥

बहुत पश्चिम को द्रुत भागते,
नयन गोचर थे तब हो रहे।
सभय हैं भगते जिस भाँति ही,
मृग सभी लख कानन-राज को ॥४०॥

भवन रिक्त हुए जितने वहाँ,
स्वजन जा सुख से रहने लगे।
पर अचम्भित थे सब, धाम में,
कुछ मिली न कहीं धन-राशि थी ॥४१॥

फिर गिरा कर मस्जिद मोद से,
कनक-मन्दिर का बदला लिया।
मिल गया परिशोध उन्हें, अहा,
हृदय शीतल था अति हो रहा ॥४२॥

मुसलमान गए भगते हुए,
निकट सत्वर मोहन दास के।
विनय होकर वे करने लगे,
सब सुना कर भीषण आपदा ॥४३॥

द्रवित लोचन में जल-बिन्दु ले,
चुप रहे पल दो, फिर शान्ति से।
वह लगे उनके सब ताप को,
त्वरित ही हरने वहु धैर्य दे ॥४४॥

सब रुके अति धैर्य बँधा, उन्हें,
मिल गई उनको शुभ सान्त्वना।
दुख भला रह क्या सकता कभी,
निकट जाकर कल्प विशाल के ॥४५॥

प्रण किया प्रलयंकर शीघ्र ही,
अति अपार लिया व्रत भूख का।
मरण हो, पर लोचन से कभी,
लख नहीं सकते अघ कर्म को ॥४६॥

सकल मस्जिद गेह गिरे हुए,
फिर बना कर बान्धव आप ही।
समुद हैं दिखला सकते नहीं,
सुखद है मरना उनका कहीं ॥४७॥

मुसलमान नहीं रहते पुनः,
भवन में अपने अपने अभी।
मृदुल जीव नहीं निज देह में,
रह कभी सकता यह सत्य है ॥४८॥

लख महा बध पाक-विधान का,
कथन था अपनी सरकार का।
वह न दे सकती बस 'पाक' को
विभव सात करोड़ कदापि हैं ॥४९॥

बचन भंग नितान्त न मान्य था,
अहह, राष्ट्र-पिता निज को कभी।
स्वमन में अति कातर खिन्न थे,
प्रण रुचा न उन्हें सरकार का ॥५०॥

"अशन को अब से वह छोड़ते,
वरण हैं करते बस काल का।
यदि नहीं मिलता धन 'पाक' को।
तुरत ही अपनी सरकार से" ॥५१॥

प्रश्न किया ध्रुव-सा जन-मध्य में,
अति अचम्भित भारत हो गया।
अहह, क्या करता जगदीश है,
बस यही मन में सब सोचते ॥५२॥

भुवन दंग रहा यह देखते,
पुरुष का यह कार्य नहीं कभी।
वह अलौकिक व्यक्ति अनूप है,
अखिल पावन है करता धरा ॥५३॥

पुरुष-यूथ चला कहते हुए,
यह कठोर महा-व्रत त्याग दो।
बस चले जन थे हिमवान को,
सहज शक्ति लगा कर तौलने ॥५४॥

सब चले अथवा जल-सिन्धु को,
स्वबल-बुद्धि-तुला पर तौलने।
तब चले अथवा नभ को वहाँ
पकड़ने कर में निज शक्ति से ॥५५॥

सकल भारत ने अति शोक से,
परम कातर की बहु याचना।
"प्रभु तजें अपने व्रत को महा,
अगम अम्बुधि में जन डूबते ॥५६॥

स्वजन को, धन को निज खो सभी,
सतत हैं रखते निज प्राण को।
विनत ईश्वर से बस चाहते,
जनक का हित हो सब भाँति ही ॥५७॥

मुदित हो अपनी सरकार ने,
सब दिया धन तत्क्षण 'पाक' को।
अगम शक्ति वही जिससे सदा,
सबल राष्ट्र झुका करता, अहा ॥५८॥
सकल मस्जिद गेह बने पुनः,
मुसलमान गये निज धाम को।
शुभ वहाँ सुख शांति सजी, अहा,
सफल पूर्ण हुआ व्रत पूज्य का ॥५६॥

[शार्दूल विक्रीडित]

गांधी का व्रत पूर्ण देख सब को, अत्यन्त उल्लास था,
थोड़े से निज देश में पुरुष थे, जो क्षुब्ध भारी हुए।
मुद्रा सात करोड़ दे न रिपु को, वे थे यही चाहते,
गांधी दे कर ही रहे विभव को, वैरी बनाते उन्हें ॥६०॥
क्रोधावेश बढ़ा अतः स्वजन का, घाती बनें तात के,
गांधी की सब नीति को पनपने, देना नहीं चाहते।
था इस्लाम कुरान नित्य प्रिय ही, प्यारे सुधी सन्त को,
अच्छी थी लगती न नीति उनकी, ऐसे कई वर्ग थे ॥६१॥
देते थे धमकी अनेक विधि से, पत्रादि से, साधु को,
"गांधी दो तुम छोड़ मोह रिपु के, सम्पूर्ण संबंध को।
होती हैं नित हानि आज तुम से, हिन्दू हितों की महा,
सोचो शीघ्र नहीं विदा भुवन से, होना पड़ेगा तुम्हें" ॥६२॥
ऐसे कुत्सित पूर्ण अन्य दल से, कोई गया पास में,
फेंका बम्ब फटा सुधी निकट में, रक्षा हुई भाग्य से।
भारी लज्जित देश के सुजन थे, ऐसे बुरे कृत्य से,
गांधी जी करते क्षमा विहँसते, देते नहीं ध्यान थे ॥६३॥

रोका जा सकता उलूक दल से, मार्तण्ड भी हैं कहीं,
श्री राकेश समक्ष तामस कहाँ, आता निशा में जभी ।
जाता है मृगराज मत्त पथ में, पश्वादि क्या बोलते,
त्यागी सम्मुख तुच्छ व्यक्ति नित ही, वैसे महा व्यर्थ हैं ।।६४।।
होती थी न कदापि लेश उनको, चिन्ता कभी भीति से,
त्यागा सत्पथ ध्येय को न भय से, आजन्म आगे बढ़े ।
जाते सन्मुख व्यक्ति थे कुपित हो, आते महा शान्ति ले,
होती क्या जल से नहीं शमन है, तीव्राग्नि ज्वाला महा।६५
दिल्ली शोभित हो गई जनक के व्यक्तित्व से जानिए,
नेता थे निज राष्ट्र के, सुयश था छाया महा विश्व में।
ऐसे सन्त अलभ्य हैं भुवन में, आते कभी ही कभी,
'ज्ञा की न उन्हें कदापि समझा, प्रत्यक्ष देवेश थे ।।६६।।

एकोविंशः सर्ग

(उत्तर-जीवन)

इन्द्रवंश

स्वाधीनता भारत को मिली जभी,
संकल्प पूरा निज हो गया तभी ।
निश्चिन्त गाँधी अपने समाज का,
उत्थान ऐसा करने लगे पुनः ॥१॥

दिल्ली पुरी में रह नित्य प्रार्थना,
संध्या-सभा में करते सुधीन्द्र थे ।
तल्लीन हो व्यक्ति समस्त वर्ग के
सद्भावना का पढ़ते सुपाठ थे ॥२॥

संध्या सभा में सब प्राणि मात्र को,
गाँधी सुनाते इतिहास पूर्व का ।
"कैसी महा शान्ति विराजती तभी,
था राम का राज्य स्वदेश में जभी ॥३॥

होता नहीं दैहिक ताप था कभी,
होता नहीं भौतिक ताप था कभी ।
कोई न था दैविक ताप से दुखी,
सारी प्रजा वैभव से प्रसन्न थी ॥४॥

थे भाग्यशाली नर तेजयुक्त थे,
रोगादि पीड़ा अघ से विमुक्त थे ।
कोई न था दीन दरिद्र भी वहाँ,
थे पूर्ण ज्ञानी, जन, मूर्खता कहाँ ॥५॥

थी आत्मनिष्ठा जन में दयालुता,
गम्भीरता, पावन, शुभ्र शीलता ।
थी सत्य-लिप्सा, चिर-भव्य-वीरता,
तल्लीनता थी गुरुता, पवित्रता ॥६॥

ईर्ष्या बढ़ी आज समस्त ओर है,
छाया दुराचार अतीव घोर है ।
सौहाद्र, बन्धुत्व समूल खो गया,
है बन्धु का ही अरि बन्धु हो गया ॥७॥

छाया अनाचार, विचार है कहाँ,
मद्यादि-सेवी फिरते जहाँ तहाँ ।
हैं आज हिंसा-रत व्यक्ति देश के,
हैं सत्य द्रोही, पर भव्य वेष के ॥८॥

कामी, विवादी खल का समाज है,
लोभी महा वञ्चक धूर्त-राज है ।
है तस्करों की चलती सभी कहीं,
संसार ऐसा रुचता हमें नहीं ॥९॥

[द्रुतविलम्बित]

विनय संयुत हों नर देश के,
कपट द्वेष भरा उनमें न हो।
सब समान रहें तज भेद को,
हृदय से प्रिय सत्य सदैव हो ॥१०॥

पुरुष का यह लक्षण है नहीं,
वचन में कुछ हो, कुछ चित्त में।
सुख मिले अथवा दुख ही मिले,
सतत भीतर बाहर एक हो ॥११॥

मुदित होकर सत्पथ में सदा,
निरत जो रहते, भय मुक्त हो।
बस विभूषित है उससे मही,
परम शान्ति विधायक है वही ॥१२॥

विविध दुर्गुण द्वेष विचार का,
दमन जो करता निज क्रोध का।
हनन जो करता न विवेक का,
नर अहिंसक है वह सर्वदा ॥१३॥

विभव से विषयादिक राग से,
पृथक जो रहता सब भाँति है।
व्यथित जो रहता पर दुःख से
वह अहिंसक की प्रति मूर्ति है ॥१४॥

फल अनूप, सुधोपम कंद को,
ग्रहण जो करता, शुभ अन्न को।
विमल बुद्धि बढ़ा कर विश्व में,
नर अहिंसक है बनता वही ॥१५॥

अखिल को दुख कारक जो सदा,
निपट स्वार्थ भरा जिसमें महा।
विविध राग भरा जिस व्यक्ति में,
पुरुष हिंसक है वह सर्वथा ॥१६॥

सतत जो तजते निज चित्त से,
सकल दुर्गुण द्वेष विकार को।
शुभ अहिंसक वे सब काल में,
सुखद सेवक सभ्य समाज के ॥१७॥

परम धर्म अहिंसक वृत्ति है,
पुरुष धारण जो करता इसे।
वर विधायक सभ्य समाज का
भुवन शोभित है करता वही ॥१८॥

यह न शुष्क, न नीरस है कभी,
अगम चेतन का चिर धर्म है।
यह स्वभाव मनोहर चित्त का
विकसती इससे नवशक्ति है ॥१६॥

परम प्रेम प्रभाकर है यही,
तम विनाशक है, छल वैर का।
हृदय कंज विकासक जानिए,
स्वजन-कोक-प्रकाशक सर्वदा ॥२०॥

[शार्दूल विक्रीडित]

है संसार बना न दम्भ बल या, मिथ्यादि व्यापार से,
होती है रचना विशाल जग की, सामर्थ्य से सत्य के।
हिंसा से न बना हुआ भुवन है, होता सदा नाश ही,
एका से जड़ जीव साथ रहते, होती अहिंसा जभी" ॥२१॥

गांधी जी इस रूप से विनत हो, ध्या सभा में सदा,
देते थे उपदेश सत्य श्रम का, अत्यन्त उल्लास से।
होते प्रश्न अनेक भक्त जन से, शंका समाधान के,
ते उत्तर प्रेम से विहँसते, संतुष्ट होते सभी ॥२२॥

पूछा था बस एक ने विनय से, संध्या-सभा में कभी,
होगा भव्य समाज देश भर में, कैसे बताएँ सुधी।
गांधी ने उससे कहा मुदित हो, प्यारे सुनो प्रेम से,
होगा सुन्दर भव्य देश अपना, कैसे बताता तुम्हें ॥२३॥

"धर्मारूढ़ समस्त बन्धु जन हों, देशानुरागी महा,
पाएँगे सब इष्ट कार्य जिनकी, होगी यथा योग्यता।
होगा ध्यान निरांत ही समय का, होंगे नहीं तामसी,
लक्ष्मी युक्त स्वदेश व्यक्ति सुख में, होंगे न दुःखी कभी ॥२४॥

होगा प्रेम समुद्र ही उमड़ता, नारी नरों में अभी,
होगा बाधक एक भी न पर के, सत्कर्म में, स्वप्न में।
होगा ध्यान न वर्ण का स्वजन के, हृद्देश में लेश भी,
पाएँगे सब मान और पद भी, अन्याय होगा नहीं ॥२५॥

मेधावी नर निम्न तुच्छ कुल का, आगे बढ़ेगा सदा,
होगा ब्राह्मण मूर्ख तो न उसका, सम्मान होगा कभी।
मेधा का शुचि प्रेम, ज्ञान बल का, होगा सदा ध्यान ही,
होगी बाधक जाति सम्भव नहीं, उत्थान में व्यक्ति के ॥२६॥

स्वार्थी, लम्पट, धूर्त उच्च पद से, जल्दी हटेंगे तथा,
विद्या वैभव-शील निम्न दल के, आगे बढ़ेंगे सुनो।
होता उच्च नहीं—नहीं पतित भी, कोई कभी जन्म से,
स्वामी के वर पुत्र हैं सम सदा, संसार वासी सभी ॥२७॥

मिथ्या-धर्म अधर्म ही पतन का, है मूल जानो सदा,
सेवा से शुभ धर्म से अखिल में, होता यथा मान है।
विप्रोत्पन्न महीप रावण न क्या, मारा गया राम से,
श्री वाल्मीकि, कबीर, व्यास मुनि भी, पूजे गए क्या नहीं"॥२८॥

[द्रुत विलम्बित]

"तम, रजो गुण में, वर सत्व में,
विषम भेद अपार बताइए।"
जनक ने समझा सब से कहा,
सुभग पाठ मिला जन-वर्ग को ॥२९॥

[शार्दूल विक्रीड़ित]

"होता युक्त प्रमाद से तम महा, अज्ञान निद्रादि से,
है रागात्मक भी रजोगुण सदा, कर्मादि में बाँधता।
होता निर्मल सत्व ज्ञान, सुख की, आसक्ति से पूर्ण है,
तीनों ही गुण जीव को, वदन के, व्यापार में बाँधते ॥३०॥
सारी इन्द्रिय ज्ञान-युक्त जब हों, हृद्देश में बोध हो,
होती है उस काल में पुरुष में, उद्बुद्धि भी सत्व की।
हो दुश्चंचल चित्त, स्वार्थ युत हो, कर्मादि में ही लगे,
प्राणी को समझो रजो गुण हुआ, पैदा जहाँ लोभ हो ॥३१॥
छाती है तम-कालिमा हृदय में, अज्ञान साम्राज्य की,
सत्कर्तव्य-विमूढ़ता, अशुचिता, दुष्कर्म-तल्लीनता।
सारी मोहक वृत्तियाँ बढ़ सदा, आत्मा गिराती जभी,
होता जागृत है तमोगुण तभी, दुर्भाग्य से चित्त में ॥३२॥
होता सात्विक कर्म का फल सदा, सद्ज्ञान वैराग्य है,
सारे राजस कर्म का फल महा, दुःखादि ही जानिए।
होता तामस कर्म का फल सुनो, अज्ञान ही सर्वदा,
तीनों ही गुण व्यक्ति-बंधन, कभी, होती नहीं मुक्ति है ॥३३॥

होती है जब मृत्यु सत्व गुण में, स्वर्गीय होता तभी,
होती मृत्यु जभी रजोगुणमयी, होता पुनः व्यक्ति है।
होता कुत्सित व्यक्ति का निधन है, दुष्पाप दुर्भाव में
होते कीट पतंग तुच्छ कृमि हैं, वे भोगते क्लेश को ।।३४।।
आत्मा है सब ईश को सब कहीं ब्रह्मांड में देखता,
तीनों ही गुण के परे विचारता आनन्द में मग्न हो।
जो सांसारिक कष्ट को विभव को, है मानता भी नहीं,
ऐसे ही नर मुक्त हैं भुवन में, आते नहीं योनि में" ।।३५।।

[द्रुत विलम्बित]

सुमग प्रश्न किया तब एक ने,
गुण अतीत बनें किस युक्ति से।
सकल लक्षण को समझाइए
विषय गूढ़ परे निज बुद्धि के ।।३६।।

'विमल-ज्ञान तथैव प्रवृत्ति में,
नर कभी रमता यदि है नहीं।
यदि नहीं करता फिर कामना,
जन निवृत्त हुआ तब जानिए ।।३७।।

निरत जो रहता निज भाव में,
समझता सुख को सम दुःख को।
कनक-पाहन में, रज में सदा,
सतत ही रखता सम भाव जो ।।३८।।

पुरुष जो निज धैर्य न त्यागता,
समझता प्रिय अप्रिय तुल्य है।
अयश को यश को सम जानता,
ब मान तथा अपमान को ।।३९।।

स्वजन में अरि में सम भाव ही,
पुरुष जो रखता वह धन्य है।
रमण जो करता प्रभु एक में,
गुण अतीत वही गुण के परे" ॥४०॥

बर विवेक मिला जन को पुनः,
मुदित हो कर मानव एक ने।
विनय संयुत सादर यों कहा,
सरल संत स्वभाव कहें प्रभो ॥४१॥

स्वजन को समझा कर प्रेम से,
फिर लगे कहने स्वविचार को।
भुवन में अति दुर्लभ जो सदा,
अब सुनो उस संत स्वभाव को ॥४२॥

"निरत ही रहते उपकार में,
मुदित हो सहते दुख संत हैं।
वदन को अपने हँसते हुए,
सहज ही तजते पर स्वार्थ में ॥४३॥

अनल में जलते निज स्वार्थ के,
अधम व्यक्ति सदा त्रय काल में।
विकल ही रहते पर संत हैं,
पर हितार्थ तथा परमार्थ में ॥४४॥

खल, विनाशक है पर व्यक्ति का,
सतत रक्षक संत, समाज का।
दुखद कंटक ही सम दुष्ट हैं
सुमन के सम संत समस्त को ॥४५॥

अधम का कटु शब्द कराल भी,
कुसुम-स गता नराल धुसा। को
अचल-सी उनमें इड़ता भरी,
जलद-सी वर शीतलता महा ॥४६॥

उरग-लोभ उन्हें डसता नहीं,
विषय-जाल परे नर संत हैं।
मद-मृगाधिप सत्वर भागता,
सतत पावन संत-प्रकाश से ॥४७॥

समझते जग को परिवार हैं,
हित महा करते सब काल में।
अरि-सखा सम ही नित जानते,
अहह ! संत सुशोभित विश्व में ॥४८॥

भुवन शुभ्र बने फिर आदि सा,
जनक के मन में वर कामना।
नित रहा करती इस हेतु ही,
दिवस में निशि में कल थी नहीं ॥४९॥

अथक उद्यम से, शुभ-पाठ दे,
परम सत्य, दया, तप, शील का।
सरल पाठक में तप, तेज से,
अतुल मानवता भरने लगे ॥५०॥

ग्रंथ-परिचय

राष्ट्र-भाषा के पद पर हिन्दी के सुशोभित हो जाने के कारण उसका क्षेत्र राजस्थान से बिहार तथा हिमाद्रि से विन्ध्य प्रदेश, के आगे बढ़कर सम्पूर्ण भारतवर्ष हो गया है। विदेशी भी हिन्दी भाषा सीखने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं। इधर बापू के विश्व-बंद्य हो जाने से उनके जीवन तथा अमर संदेशों पर प्रकाश छोड़ने वाली हिन्दी गद्य-पद्य रचनाओं की भरमार लग गई परन्तु कोई ऐसा उत्तम साहित्यिक ग्रंथ प्रकाश में न आ सका जो कि राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता। यह अभाव पाठक जी को सदा खटकता रहा। फलतः उन्होंने अपने गहन अध्ययन के अनन्तर 'गांधी-चरितामृत' का सृजन किया।

गांधी-चरितामृत श्री हरिऔध जी के प्रिय-प्रवास की शैली में लिखा हुआ द्वितीय अनूठा काव्य है जो द्रुतविलम्बित, वंशस्थ तथा शिखरिणी आदि विविध वार्णिक छन्दों में २१ सर्गों में समाप्त है। कवि ने गांधी-चरितामृत में बापू के सत्य, अहिंसा तथा शान्ति की दिव्य मन्दाकिनी प्रवाहित की है, जिसकी तलैटियों में समाज सुधार अछूतोद्धार एवं विश्व-बन्धुत्व आदि के मनोरम मन्दिरों का निर्माण किया गया है। यह देव-पूजा में तल्लीन हो गया है। उसकी अर्चना-पद्धति की पटुता को देखकर हमें पूर्ण विश्वास है कि पूज्य बापू की दिवंगत आत्मा को इस 'चरितामृत' से अक्षय शान्ति मिलेगी एवं विश्व-लोक में एक नये युग का अभ्युदय होगा जिसके स्वर्ण विहान में उषा सुन्दरी थिरक उठेगी तथा ऐसा समुज्ज्वल जागरण होगा कि एक बार फिर भारत को जगद्गुरु बनने का पुनीत अवसर प्राप्त हो सकेगा।

प्रस्तुत काव्य ऐतिहासिक होते हुए भी एक सरस साहित्यिक रचना है। इतिहासकार इतिहास में अपनी पेन्सिल द्वारा भूतकाल का नीरस चित्र प्रस्तुत करता है परन्तु जब वही चित्र किसी कलाविद् साहित्यकार के हाथ में पड़ जाता है तो वह अपने सरस रंगों के प्रयोग से उसका रंग निखार कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। फलतः इतिहास-वेत्ता कवि ने गांधी-चरितामृत में समाज का सच्चा रूप लिया है। उसे प्रचलित रीति-रिवाजों, सामाजिक त्रुटियों एवं सुधारों तथा जन-व्याप्त मानसिक आन्दोलनों के विविध चित्रों को लेने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

"कवि समाज में साम्राज्यवादी राष्ट्रों तथा पूंजीपतियों की जन-शोषण-

नीति तथा दीन-हीन-असहायों के ऊपर शासकों के क्रूर अत्याचारों एवं व्यवहारों को देख विक्षुब्ध हो जाता है। पर वह किस प्रकार आत्म-शक्ति, न्याय, सत्य तथा अहिंसा के अमोघ अस्त्र-शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त करता है" इस समस्या का काव्य में 'अफ्रीका में गोरों द्वारा किए गए अत्याचारों', चम्पारन की नील-समस्या', 'बारडोली तथा खेड़ा के कृषकों की दयनीय अवस्था' के स्थलों पर बड़े ही मार्मिक ढंग से सुन्दर समाधान हुआ है।

'अछूत-वर्ग' जो सामाजिक दासता की रज्जु में बँधा हुआ पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहा था और जिसको विदेशी शासक एवं अन्य मतावलम्बी धन-लोभ की हरियाली दिखाकर हिन्दू समाज से अलग करने में दत्त-चित्त थे उनको महात्मा जी ने २१ दिन के निरन्तर उपवास तथा अपने प्राणों की बाजी लगाकर, सवर्ण हिन्दू सिद्ध करके विघर्मी होने से बचा लिया अन्यथा आज हमें घर-घर और गाँव-गाँव हरिजनों का एक दूसरा पाकिस्तान दृष्टिगोचर होता।' इस घटना का चित्रण भी कवि ने उत्तम ढंग से किया है जिससे महात्मा जी के हरिजनोद्धार के कार्य पर विशद् प्रकाश पड़ता है।

अछूतों की दीनावस्था एवं क्रूर समाज के अत्याचारों को कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में पद्य-बद्ध किया है :—

"वे कूप से जल नहीं भरते द्विजों के,
होते प्रविष्ट न कभी वर मन्दिरों में।
सम्मान आत्म-बल से गिर, हीनता में,
प्यारे अछूत पशु सा सुख हैं न पाते।"

समाज में अछूतों के प्रति फैले हुए घृणा के भाव को मिटाने के हेतु कवि अफ्रीका में महात्माजी के प्रति गोरों द्वारा किए गए अछूतों जैसे व्यवहार का वर्णन करता है जिससे विदित होता है कि आर्य भी विदेशियों के द्वारा अछूतों के समान ही व्यवहार पाते हैं। कवि का कथन है कि :—

"धुलाया गया वारि से पूर्ण डिब्बा,
हुआ भ्रष्ट था आर्य के बैठने से।"

साधारण जनता प्रायः काल की द्रुत-गति से अपने लक्ष्य से च्युत हो जाती है, परन्तु महापुरुष प्रकाश-स्तम्भ की भाँति अचल रहकर पथ-प्रदर्शन किया करते हैं। साम्प्रदायिक संस्थाओं के घृणित एवं विषाक्त प्रचार से हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के शत्रु बन बैठे थे तथा भारत का प्रत्येक नगर

ग्राम एवं मुहल्ला रण-क्षेत्र बन गया था। भाई, भाई का गला काटने लगा। ऐसे समय में बड़े-बड़े गम्भीर पुरुष भी उत्तेजित हो उठे तथा वे साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि फूंककर भारत के नाम पर कलङ्क का अमिट टीका लगाने लगे। नोआखाली, कलकत्ता, दिल्ली, बिहार एवं अन्य स्थानों में साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। ऐसे समय में बापू ने सर्वत्र भ्रमण कर, प्राणों को संकट में डाल कर उन्हें प्रेम का ऐसा अमर पाठ पढ़ाया कि शत्रु पुनः मित्र बन गये। जिन लोगों ने बॉललाइट के कारण अपने हाथों भव्य-गृहों को ध्वस्त किया था, उन्होंने ही महात्मा जी के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हीं हाथों से उन मकानों का पुनर्निर्माण किया। जो अस्त्र-शस्त्र हिंसा के लिए एकत्रित किये गये थे, वे शान्ति के अग्रदूत महात्मा जी के चरणों पर रख दिये गये। इन घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत-ग्रन्थ में ऐसे रोचक ढंग से किया गया है कि ग्रंथ के पढ़ते समय पूर्ण चित्र नेत्रों के समक्ष आ जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पाठक स्वयं गांधी जी के साथ भ्रमण कर रहा है :—

बढ़ कर मिलते थे कंठ से कंठ दोनों,
परम मिलन गांधी मुग्ध हो देखते थे।
सकल धन दिलाया हिन्दुओं को सभी से,
प्रिय जन ललनाएँ लौट आईं घरों को!

* * * *

अखिल मुसलमानों को रहा खेद भारी,
उन सुरपुर-वासी को न लौटा सके वे!
फिर सम्रद उन्हीं ने ही बनाया घरों को,
विधिवश जिनको था हा, गिराया, जलाया।

समाज में फैली हुई दहेज प्रथा को भी समूल नष्ट करने के हेतु इस कुप्रथा का दुष्परिणाम निम्नांकित पंक्तियों में कवि दर्शाता है :—

यथेष्ट लक्ष्मी जिन के नहीं है,
विवाह होता न कभी सुता का।
कुमारियाँ वे अविवाहिता ही,
स्वजन्म को हैं दुख में बिताती!

* * * *

कहीं कुमारी विष खा मरी हैं,
समाधि लेती जल में कहीं हैं !

समाज में फैली हुई आर्थिक विषमता पर भी कवि की दृष्टि पड़ी है और पूँजीवादियों की आक्रमकता एवं शोषण नीति की तीव्र भर्त्सना की गई है। अपने हाथ से कार्य करने वाले कृषकों तथा मजदूरों की दयनीय दशा का समाधान विदेशी एवं मिलों से बने हुए वस्त्रों का बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्त्रों के प्रचार द्वारा कवि ने किया है। कवि ने श्रमिकों की शोचनीय दशा का वर्णन कर, उनके प्रति समाज का मानवतापूर्ण व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया है :—

वे अर्ध नग्न रहते, सहते क्षुधा को,
हैं कार्य में निरत ही दिन में, निशा में।
हा, नित्य रक्त बनता उन का पसीना,
है नर्क तुल्य सब भाँति सदैव जीना !

* * * *

लेते कहीं ऋण तभी करते दवा हैं,
होते विवाह शुभ कार्य उधार से ही।
होते न मुक्त ऋण के गुरु भार से वे,
दे ब्याज कोष भरते स्व महाजनो के !

श्रमिकों की इस शोचनीय परिस्थिति से महात्मा जी स्वयं दुःखी हो उठते हैं :—

देखा जभी श्रमिक के दल को मिलों में,
अत्यन्त दुःख उनके उर में समाया।

वे पंक्तियाँ ही श्रमिकों में सुधार लाने के लिए समाज में प्राण फूँकती हैं और पूँजीवाद की समाप्ति का बिगुल बजा देती हैं।

सामान्य कृषकों की दशा का भी सुन्दर कारुणिक दृश्य उपस्थित किया गया है जिसे देख कर पाठक का हृदय विगल जाता है। गाह के विषय में कवि कहता है कि :—

जाना दुखी कृषक से मिलना, उसी के,
सम्पूर्ण जीर्ण घर की छत देख लेना।
आषाढ़ में जलद बिन्दु न रोक पाती,
पानी समस्त गिरता गृह मध्य में ही।

* * * *

वे शीत में अतुल कष्ट सदैव पाते,
हा, अग्नि के निकट में निशि हैं बिताते।
वर्षा कहीं विषमता कुछ है दिखाती,
वे भोगते तब मनो यम-यातना को!

न्यायालयों में उत्कोच की भी चुटकी कवि ने ली है और वकीलों द्वारा किस प्रकार अधिकारियों को रुपया दिया जाता है, इसका भी स्पष्ट वर्णन है :—

हैं बाबुओं के सहयोग से ही,
उत्कोच लेते अधिकांश न्यायी।
हैं मास में वेतन पाँच सौ ही,
वे कोष में हैं रखते सहस्रों!

* * *

देते उन्हें घूस वकील भी हैं,
जो न्याय के दूत सदा कहाते।

* * *

साक्षी मृषा ही अति धूर्त प्राणी,
आजन्म देते, कुछ मूल्य लेते।

भोले भाले ग्रामीण ग्रामीणा, वकीलों द्वारा किस प्रकार झूठ बोलने पर बाध्य किए जाते हैं इसका उदाहरण :—

ग्रामीण आते स्व वकील से हैं,
दुःखान्त गाथा अपनी सुनाते!
कानून बाधा जब देखते वे,
मिथ्या सिखाते तब हैं नरों को!

साधु-वेष धारण किए हुए वञ्चकों से भी कवि ने जनता को सावधान किया है जो सुन्दर वेष बना कर जनता का धन हरण कर लेते हैं और उसे अपने निजी भोग विलास में व्यय करते हैं :—

हैं राम भक्त कितने उनके गुणों से,
होते प्रभावित सभी रत धर्म में हैं!
हा, साधुवेष रखते पर कर्म में वे,
आमूल भक्त उस रावण पातकी के।
*   *   *   *
सम्पूर्ण आय धन को सब मन्दिरों के,
वैराग्य मूर्ति खल साधु सदा उड़ाते!
राष्ट्रीय कार्य हित में धन को लगाते,
उत्थान देश जन का कर मुक्ति पाते!

खेड़ा सत्याग्रह के प्रसंग में जमींदारों द्वारा किए गए अमानुषिक अत्याचारों का वर्णन कर दीन कृषकों की परवशता का चित्रण कवि ने किया है :—

कुर्की कराते पशु धान्य छीनते,
लेते जमींदार लगान अन्त में!
जो दे न पाते कर को नितान्त थे,
जाते बिठाये अति चंड धूप में!
यों प्राप्त होता धन था नहीं अतः,
होते खड़े वे नत-शीश ताप में!

इसी प्रकार पूँजीवादियों की शोषण नीति का भी भण्डा फोड़ कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में किया है :—

संसार में थे दल दो बने तभी,
सम्पन्न होता बस एक जा रहा!
था दैन्य का कातर रूप दूसरा,
दोनों बने शोषक-शोष्य अन्त में!

बाजार निर्माण निमित्त युद्ध भी,
साम्राज्यशाली दल में हुए कई।
व्यापार था आश्रित एक तंत्र के,
सीमा बढ़ाते निज राज्य की अतः!

सन् १६४२ के स्वातन्त्र्य संग्राम का किस निर्दयता के साथ दमन किया गया, इस को पढ़कर रोमाञ्च हो आता और सभ्य कहलाने वाले ब्रिटेन के बर्बरतापूर्ण व्यवहार के प्रति घृणा, क्षोभ एवं ग्लानि होती है। बलिया के असहाय कृषकों पर किस प्रकार अत्याचार किया गया, इसको निम्नांकित पंक्तियाँ प्रकट करती हैं :—

गोली उड़ाए नर देश के गए,
रक्षा नहीं थी उनकी कुचक्र से!
जो रेलवे में निशि मध्य दीखता,
तत्काल होता यमराज ग्रास था॥
अधिक वाड़ित थे कुछ दुष्ट से,
कठिन जेल मिली कुछ को वहाँ।
शिर कटे कुछ के क्षण मात्र में,
कुछ विनष्ट हुए सकुटुम्ब थे॥
जब हुआ परितोष नहीं पुनः,
तुरत अग्नि समर्पित धाम थे।
शिशु युवा महिला, जनमात्र हा,
जल भुने न बचे नरमेध में॥
अधजले जन को भगते हुए,
पकड़ भून दिया फिर अग्नि में।
बच सके न अरे प्रलयाग्नि से,
तुमुल-ताण्डव था वह काल का॥
जिस प्रकार कभी वन अग्नि में,
विवश हो जलते वन जीव हैं।

अहह, मानव दानव कोप से,
बस जले उस भीषण अग्नि में ॥
भग गई करुणा उस ठौर से,
कुटिलता सहमी अति नाश से,
अधम कार्य हुआ जग में नहीं,
पुरुष मेध हुआ जिस भाँति था ॥

भाषा

गांधी चरितामृत की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। खड़ी-बोली की कविताओं में जो सरसता का अभाव रहता है और जिसके कारण ब्रजभाषा को ही हिन्दी के कवि चिरकाल तक अपनाए रहे; उस कमी का प्रस्तुत ग्रन्थ में भली-भाँति परिहार किया गया है। ऐतिहासिक ग्रन्थ होते हुए भी अनेक स्थल ऐसे मिलते हैं जहाँ पाठक कवि के भावों के साथ स्वयं बहने लगता है। भाषा भावानुकूल स्वयं ही परिवर्तित होती हुई जान पड़ती है कवि के अन्तस्तल से निकली हुई पदावली स्वयं ही भावों को प्रकट कर देती है। मुहाविरों ने अँगूठी में नग का काम किया है जिस के द्वारा भाषा में बल के साथ सौष्ठव आ गया है। इस प्रकार "हरिऔध" जी को 'प्रिय प्रवास" में, भाषा में बल लाने के हेतु जो दुरूह पदावली अपनानी पड़ी उससे गांधीचरितामृत बच गया है और भाषा सर्वत्र उतनी सरल मिलती है कि सर्वसाधारण भी इस ग्रन्थ का आनन्द ले सकते हैं। कतिपय उदाहरणों द्वारा हम मुहाविरों द्वारा सरल भाषा में आये हुए ओज गुण का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

खड़े हो गए कान नारी नरों के,
सुना लोक नेता बता क्या रहा है !

समस्त स्त्री-पुरुषों के लोक नेता की वाणी के सुनते ही कान खड़े हो जाना, नेता के, जनता पर प्रभाव को भली प्रकार प्रकट करता है! इसी प्रकार :—

ज्ञात होता यही था बचेंगे नहीं,
भाग्य तारा तभी अस्त होगा अरे,
और ही भाल में था लिखा देश के,
बालबाँका हुआ ही नहीं पूज्य का !

इस छन्द में कवि ने मुहाविरों की सहायता से भाषा को ओजस्विनी बना दिया है परन्तु कोई भी कठिन शब्द उसे नहीं लाना पड़ा।

जिस समय गांधी जी अफ्रिका में गोरों के घरों से निकलकर सकुशल सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए उस समय गोरों की मनोस्थिति पर कवि ने व्यंग्य किया है :—

जाल से छूट नागारि स्वच्छन्द है,
भाग्य को वे लगे कोसने खेद से !

जब महात्मा जी भारत पहुँचे तो भारतीयों की प्रसन्नता को एक पंक्ति में मुहाविरों की सहायता से कवि ने वर्णा दिया है :—

'फूले नहीं सहज बंधु समा रहे थे,

प्रकृति-वर्णन

गांधी चरितामृत महाकाव्य के समस्त गुणों से विभूषित है। प्रकृति वर्णन रीति कालीन आचार्यों की सम्मति में महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है। अतः कवि ने अनेक स्थल पर समुद्र, सरिता, बन, उपवन, कृषि एवं उषा आदि का आकर्षक चित्रण किया है। केशव की भाँति यह प्रकृति चित्रण केवल वृक्षों तथा फलों की नामावली ही नहीं उपस्थित करता बल्कि तुलसी की भाँति प्रकृति का उदाहरण लेकर कवि अनेक मानव-तत्वों की उपमा रूप में रखता है। समुद्र तथा सरिता के सौन्दर्य के साथ ही कवि ने अनुपम सत्य भी निकाला :—

अति अगाध असीम नदीश में,
लहर थी उठती, गिरती अहो
विविध भाँति विचार मनुष्य के,
हृदय में बनते मिटते सदा।

* * *

किरण से दिन में वर ऊर्मियाँ,
सहज हेममयी बनतीं यथा।
अघम पूजित साधु सुवेश से,
भुवन में रहते कुछ काल ही।

जाती सुमन्द गति से सरिता कहीं थी,
होता न बन्द चलना उसका कभी भी।
संदेश क्या भुवन को वह दे रही थी,
स्वार्थी न विश्व सुनता उसका कभी था।

ऐसे मानव-तथ्यों को निकालने में भी कवि ने प्रकृति-वर्णन को ही प्रमुख रक्खा है। अतः अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ कि कवि ने प्रकृति का स्वछन्द वर्णन किया है जैसे प्रातः काल के वर्णन में :—

निशा की गई कालिमा घोर छाई,
दिवानाथ ने तेज के बाण छोड़े।
सभी वस्तुएँ श्यामता में रंगी थीं,
पुनः दिव्य आभामयी हो गई वे।

* * *

रहे बन्द पक्षी सभी घोसलों में,
उड़े पक्ष को खोल आठों दिशा में,
लगे गान गाने धरा को गुजाने,
तथा खिन्न गाँधी व्रती को रिझाने।

इसी प्रकार उद्यान एवं वाटिका-वर्णन में भी कवि ने प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण किया है यथा :—

उद्यान में नव रसाल कहीं फलों का,
निःस्वार्थ दान करते निज आश्रितों को।
खाते जिन्हें शुभ सुधा रस-को भुलाते,
सानन्द सर्व खग थे गुण गान गाते।
भारी कहीं पनस थे, कमला निराली,
जो शोभती अरुणिमा अपनी दिखाते।
अश्रान्त आमलक था फल को लुटाता,
थी कर्णिणी निकट में फल को बिछाती।
अश्वत्थशीश अपना नभ में उठाए,
बाहें बड़ा गगन में गुरुता दिखाता।
था गर्व से स्वशिर को सिरसा उठाए,
टेसू बबूल अपने रँग में रँगे थे।

चम्पा कहीं कनक थी, कटु बिम्ब देती,
सानन्द वायुशुचिशीतल स्वास्थ्य कारी,
रीवा अशोक बहु पाकड़ि कैथ नीबू,
थे नारिकेल करवीर कलिन्द काले।

सरोवर का भी वर्णन बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से हुआ है :—

न्यारे सरोवर कहीं लहरा रहे थे
थे नील शुभ्र जलजात अनेक फूले,
सौन्दर्य को निरखते मन मुग्ध होता,
स्वच्छन्द छन्द रचते कवि भी वहीं थे।

कवि की दृष्टि से भारत जैसे कृषि प्रधान देश की शस्य श्यामला भूमि का वर्णन भी नहीं छूटा है :—

था शस्य संयुत धरातल भाग कोई,
आशा भरे कृषक थे जिन में दिखाते,

गेहूँ कहीं यव कहीं सरसों उगी थी,
पीला हरा मिल छटा बनती निराली।

* * *

फूली हरी मटर की कमनीयता से,
छाती अतीव गरिमा नव वाटिका सी।
नीली, चना संग कहीं अलसी उगी थी,
श्यामा अनूप कुसुमावलि राजती थी।

वाटिका वर्णन में कवि विविध पुष्पों एवं फलों की सुन्दरता का चित्रण करता है। यथा :—

बेला, गुलाब, कुसुमाधिप, शुभ्र जूही,
फूली कहीं अतुलनीय छटा दिखाती।
दे कामिनी अनिल को स्वपराग मीठा,
थी गंध पूर्ण करती सब ही दिशाएँ।
अंगूर, सेव, कदली, बहु नाशपाती,
लीची सुबेर अमरूद अनेक मेवे,
ये पंक्तिबद्ध अति शोभित वाटिका में,
खाते विहंग कपि ये जिनको चुराते।

इसी प्रकार कवि ने प्रकृति वर्णन का चित्रण अनेक स्थलों में सुन्दरता एवं सफलता के साथ किया है जिसको पढ़कर पाठक मनोमुग्ध हो जाता है।

अलङ्कार

अलंकार काव्य का भूषण है। कविता-कामिनी अलंकार आभूषण के बिना मिखारिणी दृष्टिगोचर होती है। अतः कवि ने अनुप्रास, यमक, श्लेष

आदि शब्दालंकारो एवं उपमारूपक अतिशयोक्ति, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, उल्लेख उदाहरण स्वाभावोक्ति आदि अर्थालङ्कारों द्वारा कविता-बनिता का सौन्दर्य वर्द्धन किया है। रीति कालीन अनेक कवि अलंकारों के पीछे इतने बावले हो गए हैं कि उन्हें भाव तथा रस का ध्यान ही नहीं रह गया। परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में अलंकार भाव तथा रस के मार्ग में बाधक न होकर उसकी शोभा ही बढ़ाते हैं। ग्रन्थ में आए हुए कुछ अलंकारों का उदाहरण देखिये :—

उत्प्रेक्षा—अचूक अग्न्यस्त्र समान छूटे,
वरुद के वाण अहो धरा से,
अनन्त नक्षत्र समूह मानो,
तुले हुए थे जन जीतने को।

रूपक— तरणि जीवन में बहु भार ले,
अति अधीर यहीं जन चाहते।
चतुर नाविक के सहयोग से,
दुख-नदीश तरें पल मात्र में।
कृषक-कंज खिले रवि स्वत्व से,
यश पराग सभी दिश में भरा
तम अधर्म हटा उस भाग से,
कुमुद भूत हत प्रभ हो गये

असङ्गति—असंगति अलंकार को असहयोग-आन्दोलन एवं नमक बनाने के हेतु डण्डी यात्रा में कवि ने प्रस्तुत किया है जिसमें, भारत में कार्य हो रहा है परन्तु प्रभाव इङ्गलैण्ड में पड़ रहा है।—

ताले पड़े भारत की दुकान में,
थे कारखाने सब बन्द दूर के।

* * *

उत्तप्त बेगानल था जला यहाँ,
प्राक्षी जले थे इँगलैंड के वहाँ।
वारीश का वारि बुझा सका नहीं,
देखा गया कौतुक एक था नया।

गाँधी जार्ज के मिलन के समय उत्प्रेक्षा और सन्देह का सुन्दर प्रयोग देखिए :—

उत्प्रेक्षा और संदेह—मानो मिले कौशल राज थे तभी।
राजर्षि सम्मानित गाधि पुत्र से।
या थे मिले दो रवि एक साथ ही,
ब्रह्माण्ड में कोटिक भानु राजते।
मानो महागर्व अपूर्व योग ही,
दोनों मिले थे तब मूर्तिमान हो,
ऐश्वर्य या दैन्य मिले सदेह थे,
या दो विरोधी वर रूप थे मिले।

इसी प्रकार भ्रमालंकार एवं प्रतीप का उदाहरण:—

कमल के भ्रम में फिरते सदा,
नयन को लखि आ अलि पास में

* * *

प्रतीप— सहज विद्रुम को दशनावली,
विफल थी करती निज कांति से।

* * *

नयन राजित थे इस भाँति ही,
सकल खंजन लज्जित हो गए।

तथा उल्लेख एवं उदाहरण :—

उल्लेख—(१) वहाँ चीर को देख बैठा निराला,
किसी ने कहा योग का रूप देखो।

* * *

किसी ने कहा-ईश का दूत जानो,

महातेज का रूप जाना किसी ने,
महा शांति का मंत्र दाता निराला।
* * *
किसी ने कहा क्रोध बैठा वहाँ है,
नहीं शांत होगा सभी ख्वार होंगे।
* * *

(२) समझते कुसुमाकर थे उन्हें,
कुछ यही समझे सुर राज हैं।
कुछ गणेश, जनेश, महेश ही,
समझते कुछ मोहन थे उन्हें।

उदाहरण—बीच में वे फसे थे इसी भाँति ही,
मध्य में नीरदों के यथा भानु हो।

रस

रस काव्य की आत्मा है। जिस प्रकार प्राण विहीन शरीर में दुर्गन्ध फैलता है, उसी प्रकार नीरस कविता अलंकारों से विभूषित एवं सुन्दर भाषा समन्वित होते हुए भी त्याज्य है। अतः कवि ने गाँधी चरितामृत में सर्वत्र सरलता पर विशेष ध्यान रक्खा है। और काव्य में प्रचलित नवों रसों का हमें दिग्दर्शन होता है। महात्मा जी का कार्यक्षेत्र अफ्रीका एवं भारत रहा, जो परकीय परतंत्रता के पाश में फँसकर पशुता का जीवन बिता रहे थे अतः कृषकों, श्रमिकों एवं अन्य छोटे व्यवसायियों का कारुणिक चित्र उपस्थित करना स्वाभाविक था और प्रस्तुत ग्रन्थ करुण प्रधान हो गया है। अतः करुण रस द्वारा राष्ट्रीय चेतना को अक्षुराण बनाए रखने का कवि ने सफल प्रयास किया है। चम्पारन के कृषकों का मार्मिक रुदन देखिए :—

नेत्रों में जलधार थी उमड़ती सीमा न थी दुःख की,
आँसू की सरिता अजस्र बहती, रोते सभी थे मिले।
पक्षी का कुल रो पड़ा रुदन से काँपे तथा वृक्ष भी,
रोती थी निशि शीत वारि कण में जाता नहीं था सहा।

* * *

प्राणी थे कहते, उसास भरते, निश्वास होते कभी,
मानो था उस काल शीत जल से ज्वाला मुखी हो फटा।

* * *

जाती थी रुक लेखनी सहज ही आँसू भरे नेत्र से,
जाते भूल स्वकर्म लेखक, सभी प्राणी दुखी देखते।

* * *

जाता कागज भीग नेत्र जल से, लेते उठा दूसरा,
भारी धैर्य संभाल शीघ्र लिखते, वे थे व्यथादीन की।
जाती थी फिर लेखनी गिर कभी, मर्मान्त उल्लेख से,
रोता था मन ही स्वयं जिस घड़ी होता भला कार्य क्या।

शृंगार रस सब रसों का राजा है अतः कवि ने राष्ट्रीय ग्रन्थ में उत्तम ढंग से शृंगार रस का समावेश किया है कि पाठकों को सरस करते हुए भी राष्ट्रीय विचारों का पोषक ही सिद्ध होता है। संयोग तथा वियोग शृंगार का विशद-वर्णन करते हुए कवि ने नख शिख वर्णन का भी उपयुक्त स्थान निकाल लिया है। महात्मा जी को आकृष्ट करने के लिए सन्नद्ध सुन्दरी मेम के वर्णन में नख-शिख का पूर्ण वर्णन मिलता है :—

कमल के भ्रम में फिरते सदा,
नयन को लख आ, अलि पास में।
सुभग आनन को शशि मानते,
न तजते उसको सु चकोर थे।
सहज विद्रुम को दशनावली,
विफल थी करती निज कांति से।

शुक सदा रहते लख नासिका,
मधुर बिम्बक शोभित जानते।
कटि विभूति सुनी; वन केसरी,
चल दिया तज पा धाम को।
सुगम चाल निहार मरालिनी,
विमुख हो परदेश चली गई।

इसी प्रकार संयोग शृंगार का भी सुन्दर वर्णन देखिए :—

दिवस बीत गया रजनी हुई,
कब, नहीं उन को कुछ ज्ञान था।
शरद बीत गए रस रंग में,
पर न वे निकले निज धाम से।
युगल दंपति के रसराज का,
कथन हो सकता किस भाँति है।
युवक वृन्द इसे बस जान लें,
उचित वर्णन है इसका नहीं।

संयोग से वियोग में अधिक बल होता है अतः कवि ने वियोग शृंगार का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। कस्तूरवा के विरह निवेदन में भाव-विदग्धता देखिए :—

नित सुधा बरसा करता यहाँ,
वर सुधाकर से मम गेह में।
पर वही विष है बरसा रहा,
सहज भाव भुला कर सर्वथा।
गगन में शुभ तारक वृन्द जो,
सुखद थे नित ही निज नेत्र को।
अनल से जलते लगते वही,
परम पीड़ित हैं करते मुझे।

अनिल सावन का तन में कभी,
सरस था लगता शुचि संग में।
प्रखर वायु समान निदाघ के,
झुलसता मुझ को अब है वही।

शिशिर की निशि थी कब बीतती,
यह पता चलता न विनोद में
अब नहीं कटती वह रात्रि है,
बन गई वह मास समान ही।

कुसुम हार मनोहर नित्य थे,
मृदुल भी लगते जब आप थे।
पहनते गड़ते अब अंग में,
समझ कंटक हूँ द्रुत फेंकती।

प्रणय में पटु-कानन के शिखी,
विविध नृत्य अलौकिक साजते।
पति विहीन मुझे जब देखते,
समुद दंपति हैं करते हँसी।

शिशु विहीन माता की ममता में वात्सल्य-रस का सुन्दर निरूपण किया गया है :—

लख सुत-मुख मैंने क्लेश सारे भुलाए,
बन कर शिशु मैं भी खेलती संग में थी।
जब तब वह मिट्टी मुग्ध खाता अकेले,
फिर लख जब देती फेंक देता उसे था।
जब कुछ हँस देती हाथ में ले छड़ी को,
वह कुपित उसी से पीटता भी मुझे था।
पर वह लगती थी, चोट मीठी निराली,
सहज सुत मनाती चाव से चूमती थी।

मधुर अशन को ले प्रेम से ज्यों खिलाती,
फिर वह उसमें से, ले मुझे भी खिलाता।
रजमय तन से आ, अङ्क में बैठता था,
तब मलिन बनाते भी मुझे था रिझाता।

महाकाव्य में सभी रसों का होना अनिवार्य है अतः कवि ने वीभत्स रस का भी स्थान निकाल लिया है। पशु बलि की वीभत्सता दिखाते हुए कवि लिखता है कि :—

काली, महा सुभग मंदिर में उन्होंने,
देखा वहाँ रुधिर की सरिता बही थी।
प्राणी अबोध अज की बलि थे चढ़ाते,
गाँधी हुए व्यथित देख जघन्य लीला।

इसी प्रकार साम्प्रदायिक दंगों का दुष्परिणाम दिखाते हुए कवि लिखता है कि :—

पहुँच भीषण भैरव कालिका,
रुधिर-पान लगे करने सभी।
सह्रुद मुण्ड सुमाल बना बना,
पहनते सविलास मुखश्च में।

इसी प्रकार अन्य सभी रसों का समावेश प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है जिसका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। दिल्ली के दंगों में भयानक रस देखिए :—

विकल हो घर से रिपु भागने,
लग गए निज जीव बचा-बचा
पड़ गए अरि के जब सामने,
बच सके न, उन्हें यम ले गए।
बस खुदा अब लो हमको बचा,
ध्वनि यही सब ओर सुना रही।
पर वहाँ सुनता कब कौन था,
चख रहे फल थे निज कर्म का।

इसी प्रकरण में इमें रौद्र-रस का भी उदाहरण मिलता है

'मुसलमान कहीं मिलते उन्हें,
यमपुरी पहुँचा कर छोड़ते ।
हृदय की करुणा मिट सी गई,
सकल सिक्ख बने यमराज थे।

पाठकों के मनोरंजनार्थ कवि ने हास्य रस का भी समावेश किया है गांधी जी की बारात में धन-लूटने के स्वाभाविक चित्रण में हास्य-रस को देखिए :—

उछालते ही धन को करों में,
अनेक लेते गिरने न देते ।
मनुष्य लम्बे वपु लाभ लेते,
निराश छोटे मुख देखते थे ।

नवयुवकों में वीरता संचार करने के हेतु कवि ने वीर रस का भी वर्णन किया है; जिसका उदाहरण प्रस्तुत है :—

महा कालिका और दुर्गा समाना,
चलीं देवियाँ शत्रुओं को मिटाने।
यही ज्ञात होता न कल्याण होगा,
नहीं श्वेत कोपानलों से बचेगें।
सभी ओर से घोर था शब्द होता,
मिटा दो सभी क्षिप्र अन्यायियों को।
चले हैं इमें जो यहाँ से मिटाने,
उन्हें ही महाशक्ति से रौंद डालो।

महात्मा जी शान्ति अहिंसा के महान पुजारी थे। अतः कवि ने शान्त-रस का भी समावेश किया है :—

विमल ज्ञान तथैव प्रवृति में,
नर कभी रहता यदि है नहीं।
यदि नहीं करता फिर कामना,
जन निवृत्त हुआ तब जानिए ।

प्राणी अनेक शव को जल में बहाते,
थे लौटते भवन को ममता भुलाते।
प्राणी चिता रच वहाँ शव को जलाते
सम्पूर्ण राख जल में फिर छोड़ जाते।

इसी प्रकार ६ रसों का सुन्दर परिपाक प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है, जिसका रसास्वादन पाठक कर सकते हैं और काव्यानन्द का अनुभव कर सकते हैं।

चरित्र-चित्रण

महात्मा जी युग पुरुष हैं। इनके जीवन का प्रत्येक कार्य साधारण जनता के लिए आदर्श है। कवि ने दर्शाया है कि महात्मा जी जिस बात पर अड़ जाते थे बिना उसे पूर्ण किए नहीं हटते थे। वे सत्य अहिंसा के अविचल पुजारी थे। सहनशीलता उतनी थी कि कभी शत्रुओं पर उन्हें क्रोध ही नहीं आता था। इसी प्रकार महापुरुषों के अनेक गुणों से महात्मा जी युक्त थे, जिनको कवि ने स्पष्ट रूप से दर्शाने का प्रयत्न किया है। गांधी जी प्रथम श्रेणी का टिकट रखते हुए भी ट्रेन से अफ्रीका में उतार दिए गए और वे वहाँ शीत में पड़े-पड़े गोरे-काले का भेद मिटाने का संकल्प करते हैं :—

अहो शीत की रात्रि में ठंड खाते,
रहे धीरता से बिना वस्त्र ओढ़े।
जगी भावना लोक सम्मान की थी,
निशा में स्वयं कष्ट को हेय माना।

महात्मा जी की कार्यनिष्ठा निम्नांकित पंक्तियों में प्रकट होती है :—

चक्की चलाते सुत संग में वहाँ,
लज्जा नहीं वे करते कदापि थे।
'बा' थीं बनाती निज रोटियाँ स्वयं,
प्राणी सभी देख सदा सराहते।

कष्ट देने वालों पर भी महात्मा जी दया दिखाकर अनुपम सहनशीलता का परिचय देते हैं। जिस समय गाँधी जी को जेल में शौचालय स्वच्छ करने का कार्य सौंपा गया था और अधिकारी द्वारा नियुक्त एक हबशी ने गांधी जी जी के ऊपर शौच कर दिया था उस समय का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि :—

गांधी-शिखा से मलयुक्त हो गए,
बोले नहीं वे चुपचाप ही रहे।
जैसे दुरात्मा कृत कार्य हो गया,
मांगी क्षमा त्यों उससे सुधीन्द्र ने।

वकालत में गांधी जी ने सत्य निर्वाह जिस प्रकार किया वह समय और पेशे की दृष्टि से अलौकिक है जिसका वर्णन कर कवि ने महात्मा जी की न्याय प्रियता को परिलक्षित किया है :—

विज्ञात होता अभियोग मिथ्या,
देते नहीं थे सहयोग गांधी।
सम्मोह होता धन का नहीं था,
सद्धर्म का मोह उन्हें महा था।

* * *

गांधी किसी का अभियोग लेते,
न्यायी उसे ही सच मानते थे।
साक्षी नहीं वे कुछ देखते थे,
गांधी व्रती को विजयी बनाते।

इन्हीं अलौकिक-गुणों के कारण महात्मा जी विश्व-बंधु हुए और जनता इनके चरण-चिह्नों पर चलकर प्राणों की बाजी लगाने लगी। चम्पारन-सत्याग्रह का कवि द्वारा चित्रित एक दृश्य देखिए :—

आना बन्द नहीं हुआ पुरुष का, नारी चली बाल ले,
दीनों का दल दीनबंधु गृह में, आया सभी ओर से।
आए हों भगवान पार करने, मानो महा कष्ट से,
ऐसा ही मृदुभाव ले हृदय में दौड़े दुखी लोग थे।

जनता की इस अलौकिक भक्ति का परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य-शाही को सदैव महात्मा जी के समक्ष घुटना टेकना पड़ा और महात्मा जी विजयी हुए। अफ्रीका में सत्याग्रह में विजय प्राप्त करने के पश्चात् महात्मा जी का लोग किस प्रकार आदर करते हैं इसका दिग्दर्शन निम्नांकित पंक्तियों में होता है :—

सत्कार न्यारा शुभ पुष्प से किया,
टीका लगाया वर चन्दनादि से।
भूपेन्द्र वे भारत के बने मनो,
शोभा बताई किस भाँति जा सके।

कृषकों की निरन्तर सहायता एवं दीन दुःखियों के दुःख दलन का कार्य करते महात्मा जी पूजनीय हो गए और जनता उनकी चरण-रज लेकर कृत-कृत्य समझने लगी :—

चरण का रज लेकर तृप्त थे,
कृषक भाग्य अनूप सराहते।
सब यही कहते प्रभु धन्य हैं,
स्वजन पालक, बन्धु अनाथ के।

महात्मा जी की इस तपस्या का फल यह निकला कि वे तत्कालीन सम्राट जार्ज-पञ्चम से, जिनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था, एक लंगोटी पहिने हुए मिले थे और सम्राट ने आदर पूर्वक वार्तालाप किया था :—

सम्मान के साथ पुनः नृपेन्द्र के,
प्रासाद में वे पहुँचे दिनेश-से।
भूपेन्द्र भी सादर वेग से बढ़े,
राजर्षि से हाथ मिला प्रसन्न थे।
छोटी लंगोटी तन में विलोकते,
ओढ़े हुए चादर मात्र देह में।
पूँछा तभी भूपति ने अधीर हो,
योगीन्द्र क्यों हो इस भाँति वेष में।

यह महात्मा जी का व्यक्तित्व था, जो त्याग तपस्या द्वारा अनुकरणीय

बन गया था! कवि ने महात्मा जी के चरित्र-चित्रण में पूर्णतः सफलता पाई है।

कल्पना

कल्पना काव्य की अनुपम शोभा है। कवि कल्पना के पङ्खों पर आरूढ़ होकर चर्म चक्षुओं द्वारा अज्ञात लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करता है, और पाठकों को ब्रह्मानन्द के समान काव्यानन्द का रसास्वाद कराता है। पाठक कल्पनाओं के साथ उड़ता-फिरता है, और आनन्द विभोर रहता है। अतः कवि ने कोमल कल्पनाओं द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ को सजाने का प्रयास किया है। राजस्थान-वर्णन में कवि ने कल्पना के द्वारा अपने काव्य को अलौकिक बनाने का प्रयत्न किया है।

श्री राजपुत्र रण भूमि प्रदेश देखा,
आभा वहाँ रजत-सी बिखरी हुई थी।
थी बालुका शुभ्रमयी अति कान्ति वाली,
प्रत्येक भव्य कण में गरिमा छिपी थी।
स्वातंत्र्य हेतु बलि वीर हुए करोड़ों,
वे अस्थियाँ बस बनीं वर रेणुका थी।
सत्कार से कण उठा कर वीर गाँधी,
नेत्रादि में समुद्र मस्तक में लगाते।
रक्षा स्वदेश जन की करते सदा से,
सत्प्रान्त के बलि हुए बलवीर योद्धा।
सन्तप्त हो इसलिए यह देश सूखा,
वैसी अरे सरसता फिर से न आई।

उत्तप्त भानु किरणें पड़ती कभी हैं,
सन्दर्प सुप्त कण में जगता तभी है।
वे बार-बार करते रवि को चढ़ाई,
होता न सह्य उनको पर उग्रता है।
आता निशाकर जभी निज चन्द्रिका से,
है शांत नित्य करने उनकी व्यथा को।
वे शीघ्र ही विहँसने लगते तभी हैं,
शोभा वहाँ रजत-सी कण में दिखाती।
है मन्द शीतल जभी बह वायु देती,
विश्रान्ति, पूर्ण करती कमनीय सेवा।
प्रेमाश्रु से रजनिमी जब सींचती है,
उद्विग्नता तब कहीं फिर दूर होती।

दर्शन

भारतीय-परम्परा में दर्शन शास्त्र का बड़ा ही महत्व है। यहाँ की संस्कृति लोकोत्तर-जीवन के हेतु, लौकिक जीवन के क्षणिक सुखों को तिलांजलि देना सिखाती है। जीव अजर-अमर है, ईश्वर-पाप पुराय का फल देने वाला है। फिर मृत्यु का क्या भय। यह है हमारा दर्शन। कवि के ऊपर गीता तथा राम चरित-मानस का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। वर्णिक छन्दों में हम गीता का श्लोक व रामायण की चौपाई का आनन्द लेते हैं तुलसीदास जी ने लिखा है :—

पर बश जीव, स्वबश भगवन्ता।
जीव अनेक एक श्री कन्ता॥

गाँधी चरितामृत में कवि लिखता है :—

स्ववश में रहता जगदीश है,
पर नहीं यह जीव स्वतंत्र है
भुवन का प्रभु ईश्वर एक है,
अखिल में पर जीव अनेक हैं।

इसी प्रकार गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं :—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोपराणि

उसी प्रकार कवि कहता है :—

वसन जीर्ण यथा तज मोद से,
पहनते नर हैं नववस्त्र को।
बस उसी विधि जीव शरीर को,
तज सहर्ष नया वपु धारता।

इन शास्त्रीय प्रमाणों से कवि जीवन मरण को केवल एक साधारण पर्
वर्तन समझने लगता है और वह कहता है कि जन्म-मरण वास्तव में एक
वस्तु है। केवल संसार की दृष्टि से मनुष्य मरता-जन्मता है। यथार्थतः जी
एक रस है। इसकी पुष्टि कवि निम्नांकित छन्दों में करता है :—

फिर यहाँ मरता अब कौन है,
सतत जीव अभेद्य, अमर्त्य है।
अभय है चिर है, बस सत्य है,
जल नहीं सकता खर अग्नि में।

कट नहीं सकता वह शस्त्र से,
जल गला सकता उसको नहीं।
अनिल है न उड़ा सकता कहीं,
समझ लो वह ईश्वर अंश है।

तुलसीदास की चौपाइयाँ :—

भूमि परत भा ढावर पानी,
जिमि जीवहिं माया लपटानी।

पूर्णतः कवि पर प्रभाव डालती हैं और वह कह उठता है कि :-

भुवन में पड़ता जब जीव है,
फिर नहीं रहता वह ज्ञान है।
वह भुलाकर आत्मिक रूप को,
सतत दुःख सहा करता यहाँ।
अमल होकर कल्मष युक्त हो,
वह फिरा करता सबयोनि में।
जब उसे मिलता वर ज्ञान है,
वह पुनः बनता प्रभु रूप ही।

कवि ने इस दर्शन-शास्त्र का वर्णन अपना पाण्डित्य अथवा धार्मिक-भावना को दर्शाने की दृष्टि से नहीं किया अपितु वह चाहता है कि संसार के समस्त-प्राणी यथार्थ-सत्य को जान कर सांसारिक सुखों एवं दुःखों को क्षण-भंगुर समझकर हर्ष ग्लानि से मुक्त हो जायें। इन भावों को कवि स्पष्ट रूप से कह देता है :-

भुवन में सुत, बन्धु, अनेक जो,
सहज बन्धन के सब साज हैं।
अबुध हो जन स्वार्थ निमित्त ही,
असहनीय सदा दुख भोगते।
बुध इन्हें जग बन्धन मानते,
तज सुखी बनते सब भाँति हैं।
समझलो यह बात यथार्थ है,
दुख भुला कर धैर्य धरो सभी।

दर्शन का निदर्शन करते हुए कवि कहीं-कहीं उपदेश भी देने लगता है।

विचित्र झूलों पर झूलती थीं,
वरूद से ही परियाँ बनीं जो।

विनाश होता उनका पलों में,
अनित्य है विश्व मनो बतातीं।

अतः कवि-ज्ञान-गरिमा से विश्व-बंध-बापू के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ जीव की नश्वरता एवं ईश्वर की न्याय-प्रियता से संसार में पाप का विनाश एवं पुण्य का सर्वत्र प्रकाश होगा, ऐसी हमारी धारणा है। भारतीय दर्शन सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि द्वन्द्वों को समान बतलाकर कर्म की प्रधानता की पुष्टि करता है। आशा है, पाठक-वृन्द गाँधी-चरितामृत का अध्ययन कर कवि की विचार-धारा को अपना कर, भारत का भाल अपने सुकृत्यों से ऊँचा करेंगे।

म० वि० इण्टर कालेज,
सुलतानपुर
स्वाधीनता दिवस १९५७

—राम अभिलाष त्रिपाठी
एम० ए० (हिन्दी और दर्शन)
'साहित्य-रत्न'

कवि-परिचय

श्री देवनारायण पाठक का जन्म १६ सितम्बर सन् १९११ ई० में जिला सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत 'बभनगवाँ' नामक ग्राम के संभ्रात पाठक परिवार में हुआ। कवि के पितृव्य कीर्ति एवं मान के शिखर पर सुशोभित रह चुके हैं। स्व० राय साहब पं० गोकुल प्रसाद पाठक नगर के चोटी के वकील तथा जिला परिषद के अध्यक्ष थे। उन्हें ब्रिटिश सरकार ने 'राय साहब' की उपाधि से विभूषित किया था। इसी पाठक कुल में श्री बालगोविन्द पाठक के तीन पुत्र रत्न हुए। १ सर्व श्री चन्द्रबली पाठक, २. केशव पाठक ३. देवनारायण पाठक।

इन पाठक बन्धुओं में प्रथम और तृतीय विशेष रूप से हमारी श्रद्धा एवं आदर के पात्र हैं। प्रस्तुत काव्य के रचयिता, श्री देवनारायण पाठक का जीवन अपने पूज्य भ्राता तथा कांग्रेस के अमर सेनानी श्री चन्द्रबली पाठक से अत्यन्त प्रभावित हुआ।

श्री चन्द्रबली पाठक एक आदर्श तथा सच्चे गांधी भक्त हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन कांग्रेस की सेवा में व्यतीत हुआ है। पाठक जी कई वर्ष जिला परिषद के सदस्य एवं जिला काँग्रेस के सभापति रह चुके हैं। उन्होंने सत्याग्रह

धरना तथा नमक कानून तोड़ने एवं १६४२ में सक्रिय भाग लिया। वह सदैव ब्रिटिश सरकार के विरोध का नारा लगाते रहे जिससे उन्हें कई बार कठोर कारावास तथा आर्थिक दण्ड भुगतना पड़ा। अग्रज के इन पुण्य कृत्यों से अनुज, कवि हृदय, प्रभावित होने से वंचित न रह सका वरन् उसके मानस से तद्वत् भावनाएँ लहराने लगीं। परिणाम स्वरूप उसके हृदय से पूज्य बापू को श्रद्धांजलि प्रदान करने वाली 'गांधी चरितामृत' की लोकपावनी धारा फूट निकली।

'गाँधी चरितामृत' में कवि ने आँखों देखी तथा सत्य घटनाओं का चित्रण किया है। वह नवनील हृदय का है। वह जन-ताप से पिघल उठता है। फलतः उसका जीवन समाज-सुधार और देशोत्थान में व्यतीत हो रहा है। आप आर्य-समाज सुलतानपुर के मंत्री हैं। मधुसूदन विद्यालय इण्टर कालेज के अध्यापन कार्य से जब अवकाश मिलता है तो आप दूर-दूर गाँवों में जाकर आर्य-समाज की स्थापना एवं वेद-प्रचार का कार्य करते हैं। कई बार मुझे भी पाठक जी के इन कार्यों में सहयोग देने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है। समाज में अछूतोद्धार आदि की समस्याओं के आप्रह ने पर करके बड़ी निर्भीकता तथा सहृदयता से कार्य करता है।

पाठक जी लगन के बड़े सच्चे हैं। उन्हें जिस बात की धुन सवार हो जाती है उसको पूरी करके ही दम लेते हैं। उनके अध्यवसाय तथा कार्य-परायणता से सभी विज्ञ हैं। उन्होंने अपनी ४४ वर्ष की अवस्था में एम० ए० तथा साहित्य रत्न ऐसी उच्च परीक्षाओं में सफलता प्राप्त की। पाठक जी नगर की प्रमुख साहित्यिक संस्था 'आनन्द भारती' के मन्त्री हैं।

निष्कर्ष यह कि हमारा कवि राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत सरस्वती का पुजारी है। स्वाभिमान उसका धन है तथा समाज-सेवा उसका पुण्य-कार्य।

आनन्द भवन, कटावाँ — कृष्णानन्द शर्मा

सुलतानपुर — एम० ए०, साहित्य-रत्न

१५ अगस्त १६५७